ब्रज-बल्लरी-बिलास

ब्रज-बल्लरी-बिलास

आचार्य बृहस्पति

बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

प्रकाशक : बृहस्पति पब्लिकेशन्स,
साहित्य-संगीत-संगम, डी/४-सी, डी० डी० ए० फ्लैट्स,
मुनीरका, नई दिल्ली-११००६७

संस्करण : प्रथम १९८६

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

आवरण सज्जा : श्री नरेश्वर दत्त शर्मा

मूल्य : ६० रुपये मात्र

आचार्य बृहस्पति

आचार्य श्री कैलाशचन्द्र बृहस्पति संगीत और साहित्य के गगन में अपने युग के एक जाज्वल्यवान् नक्षत्र थे। बृहस्पति के समान ही बड़े तेजस्वी, प्रखर और प्रभावी। बचपन में ही उन्हें 'बृहस्पति' नाम मिला, क्योंकि वे संस्कृत भाषा में धारावाही भाषण करते थे। उन्होंने अपने इस नाम को सहेज लिया। यों भी उनकी जन्म-कुण्डली का केन्द्रीय ग्रह बृहस्पति था। उनकी तल-स्पर्शी अपार गुणमयता भी उनके देवगुरु 'बृहस्पति' नाम को सार्थक करती थीं—"दुर्ग्रहाः कि करिष्यन्ति, यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः।" निःसंदेह बृहस्पति जी जहाँ भी रहे, जिस क्षण में रहे, जितनी देर रहे, अप्रतिम होकर चमकते रहे। वे किसी सभा या सम्मेलन में हों और अकेले रह जायें, यह संभव ही नहीं था। सभा में अभिनन्दन किसी का होना हो, केन्द्रीय व्यक्ति कोई भी अन्य हो, परन्तु यदि बृहस्पति जी वहाँ हों, तो समझ लीजिये कि उस सभा के प्रमुख आकर्णण वे ही होंगे, भीड़ उन्हीं के चारों होगी, लोग देखना उन्हें ही चाहेंगे। उन्हें सुनने के लिए आतुर रहना, अतृप्त रहना, सच्चे गुणियों का लक्षण था। अद्वितीय व्यक्तित्व, अपरिमेय विद्वत्ता, अस्तब्ध और प्रभावी वक्तृत्ता—एक ही व्यक्तित्व में इतना गंभीर और व्यापक ज्ञान, यही तो थे बृहस्पति। देवगुरु बृहस्पति कहें या लोकगुरु बृहस्पति अथवा विद्वज्जनों के आराध्य बृहस्पति या कहें, वे इस युग के बृहस्पति थे। मैंने अपने जीवन में ऐसा जाज्वल्यमान् प्रतिभा का धनी, प्रज्ञा का पुन्ज और प्रभावी व्यक्यि दूसरा नहीं देखा।

बृहस्पतिजी बड़े ही सौम्य और संयत व्यक्ति थे। वे आत्म-चिन्तन में निरंतर डूबे रहते थे परन्तु यदि उन्हें कोई किसी विषय पर छेड़ दे, उनकी प्रतिक्रिया को आमन्त्रण करे अथवा चुनौती दे दे तो फिर सत्य की प्रतिष्ठा के लिए वे कभी न रुकने वाले बादलों की तरह बरस पड़ते थे, उनकी वक्तृता में तर्क की बिजलियाँ चमकती थीं। बेचारे चुनौती देने वाले के दो-चार वाक्य बुझे हुए तीरों की तरह अंधकार में खो जाते थे। परन्तु बृहस्पतिजी का नृसिंह के समान उद्दीप्त आनन असत्य के हिरण्यकशिपु के सीने को चीरे बिना नहीं रहता था। प्रेम से तो प्रह्लाद की भाँति कोई भी उनके मस्तिष्क से खेल सकता था परन्तु चुनौती देने वाला उनके सामने ठहर नहीं पाता था।

संघर्षमय जीवन

आचार्य बृहस्पति को जिन्होंने निकट से जाना, उन्हें ज्ञात है कि उन्होंने निरन्तर संघर्षमय जीवन जिया है। उनके संघर्ष अनुभवों के पुंज बनकर उनकी आँखों में तैरते थे। बृहस्पति जी का जन्म रामपुर के एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में २० जनवरी सन् १९१८ को हुआ। पितामह रामपुर के दरबार के 'सभारत्न' एवं गुणी थे, जिनके अनुरोध पर नबाव ने, मुसलमानों का विरोध होते हुए भी, शिवालय का निर्माण कराया। पिता पं० गोविन्दराम जी संस्कृत के निष्णात विद्वान् थे, परन्तु जब बृहस्पतिजी १० वर्ष के थे तभी उनका देहावसान हो गया। विदुषी माता के संरक्षण में भाई-बहनों व गृहस्थ का बोझ सामने था। एक विषादमय अन्धकार परन्तु बालक बृहस्पति का व्यक्तित्व उस अन्धकार में खोया नहीं। उन्होंने विद्वज्जनों को ढूँढकर संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं का अध्ययन किया, साथ ही साहित्य और संगीत में अपनी प्रतीभा को निष्णात किया।

सन् १९४२ में उनका विवाह हुआ। धनार्जन और विद्याअध्ययन—इन दोनों का परस्पर विरोध होता रहता था। राष्ट्रीय विचारधारा में ऐसे ओतप्रोत कि अपने उग्र विचारों के कारण उन्हें रामपुर में ही जेल की अथक यातना भोगनी पड़ी। चक्की पीसते हुए भी विद्या-अभ्यास को न छोड़ना, उनका स्वभाव था। जेल खाने में ही अनेक फारसी ग्रन्थों का अनुवाद कर डाला, जिनमें पवित्र 'कुरआन' का अनुवाद भी शामिल था।

जेल से बाहर आए तो गृहस्थ के लिए धन की माँग उनके लिए, चुनौती बन बन गई। अखबारों का सम्पादन, आकाशवाणी के लिए नाटक और वार्ताएँ, पुस्तक-लेखन, बृहस्पतिजी ने क्या-क्या नहीं किया ? कितने कडुवे-मीठे घूँट उन्होंने नहीं पीये। कितने दिन खाली पेट न सोये ? परन्तु उनके मुस्कराते चेहरे से क्या कोई अनुमान कर सकता था कि बृहस्पति के हृदय में कितनी चुभन है।

हमेशा रेलगाड़ी में प्रथम श्रेणी में यात्रा करते थे, बहुत बढ़िया शेरवानी और अचकन, आँखों पर मोटे काँच का भारी चश्मा और सिगरेट का डिब्बा—जो ५५५ से कभी कम नहीं होता था। रेलगाड़ी में से किसी स्टेशन पर उतरते तो लोग इन्हें मन्त्री ही समझते। एक बार तो किसी मिनिस्टर की अगवानी में आये लोगों ने इन्हीं के स्वागत में सब कुछ न्यौछावर कर डाला। बाद में जब उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तो उन सबने अपने को धन्य माना। उनके स्थायी सम्बन्ध बन गये।

कष्ट के उन क्षणों में बृहस्पति जी ने जो लिखा वह स्थायी साहित्य बन गया और जो संगीत साधना की वह उन्हें देश के ऊँचे से ऊँचे पदों पर ले गई। उस

काल में वे देश के प्रमुख कवि-सम्मेलनों में भी जाने लगे। जब तक अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता रही, उन्होंने स्वाधीनता-दिवस पर लाल किले में आयोजित होने वाले कवि-सम्मेलनों में भी स्वतन्त्रता के अपने अधिकार को घोषित किया।

अरे प्रार्थना से झुकने वाला निष्ठुरसंसार नहीं है।
जो माँगे से मिलता है वह भिक्षा है, अधिकार नहीं है।

आचार्य बृहस्पति के संघर्षमय जीवन को एक बड़ा धक्का तब लगा, जब उनकी धर्मपत्नी श्रीमती साधनादेवी जी का निधन एक आपरेशन के समय हो गया। पत्नी का वियोग उन्हें जीवन भर सालता रहा।

विभिन्न पदों पर

आचार्य बृहस्पति सन् १९४९ में कानपुर के प्रसिद्ध विक्रमाजीत सिंह कालेज में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। यह पद उनके लिए बहुत छोटा था अत: एक विशेष पद का सृजन कर उन्हें 'धर्माचार्य' भी बनाया गया।

कानपुर में उनका निवास उनके संगीत संबंधी अनुसंधानों का उपयोगी काल था। मुझे उनके साथ उन दिनों वहीं रहने का अवसर प्राप्त हुआ।

शार्ङ्गदेव और भरत का विशेष अध्ययन उन्होंने वहीं किया। एक-एक अध्याय को वे प्रयोग के साथ सम्पन्न करते। वीणा और ब सुरियों के हजारों नमूने बनाये गये। श्रुतियों का व्यवहार लुप्त हो गया था इसका उन्हें बड़ा खेद था। उनका कमरा एक छोटा कारखाना जैसा लगता था। सैकड़ों वीणायें, हजारों बाँसुरियाँ, सभी धातुओं की, बाँस की, विभिन्न प्रकार के उनके छेद, सभी प्रयोगों से वे श्रुतियों का अनुसंधान करते रहे। प्रतिभा के साथ परिश्रम भी अपूर्व था बृहस्पति जी का। दो-दो साल तक निरन्तर, केवल अनिवार्य आवश्यकताओं को छोड़कर, डूबकर, एक ही बैठक से बैठकर कार्य करना उन्हीं के बूते की बात थी। ऋषियों की भाँति उनका जीवन था। भोजन हुआ कि नहीं, इसकी कोई चिन्ता नहीं, जैसे कि बृहस्पति मनुष्य न हों, स्वयं संगीत के अवयव हों।

इन प्रयोगों से श्रुति-सिद्धान्त निकाला। श्रुतियों का व्यावहारिक प्रयोग उन्होंने बम्बई की सुरसिंगार संसद में किया। संगीत-जगत् में एक हलचल मच गई। संगीत-संबन्धी जो भी प्रश्न पूछा जाए, बृहस्पति के पास उसका उत्तर मानो पहले से ही तैयार था। उनके द्वारा निर्मित "बृहस्पति वीणा" स्वयं प्रश्नों का उत्तर थी। बड़े-बड़े संगीतज्ञों के आसन हिल उठे। अनेक गुणी उनके शिष्य हुए। काशी हिन्दू विश्वविद्यातय के "कालेज ऑफ म्यूजिक एण्ड फाइन आर्टस्" के प्राचार्य पद पर कार्य करने के लिए उनसे भारी अनुरोध किया गया। उनकी कीर्ति उस समय सूचना-प्रसारण मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी तक पहुँची। उन्होंने आचार्य बृहस्पति जी को भेंट के लिए आमन्त्रित किया। अन्य अनेक

विद्वान् भी उपस्थित थे। उनके व्यक्तित्व और ज्ञान से आकाशवाणी के सभी अधिकारी उन पर रीझ ही नहीं गये, उनके लिए उस विभाग में एक विशेष पद का सृजन किया गया और सेवा-निवृत्ति तक की अवधि की गणना कर १२ वर्ष का विशेष अनुबन्ध देकर उन्हें संगीत, संस्कृत और ब्रजभाषा के परामर्शदाता के रूप में नियुक्त किया गया। शासन की ओर से ऐसा विशिष्ट सम्मान इससे पूर्व किसी अन्य को प्राप्त नहीं हुआ था।

संगीत क्षेत्र की महान् उपलब्धियाँ

आचार्य बृहस्पति जी को मैं आर्ष परम्परा का एक महान् उन्नायक मानता हूँ, जिन्होंने संगीत के प्राचीन शास्त्र-ज्ञान को नवजीवन प्रदान किया। हमारा प्राचीन संगीत बीच के काल में परकीय शासन एवं प्रभावों के कारण अपनी अविच्छिन्नता को खो बैठा और संगीतज्ञ उस विषय के शास्त्रज्ञ न रहकर केवल प्रयोक्ता मात्र रह गये। प्रयोगों में भी मुसलमानी प्रभाव ने उन्हें परम्परा से विच्युत कर दिया और मेल पद्यति को ही भारतीय शास्त्रीय संगीत का आधार वना दिया। आचार्य बृहस्पतिजी ने शास्त्र और क्रिया को अपनी प्राचीन परम्परा से पुनः प्रयुक्त किया। इस दृष्टि से उनका कार्य स्व० भारतखण्डे जी की तुलना में कहीं अधिक भारतीय और अनुसंधान परक था। अभी हाल में मैंने "रामपुर की सदारंग परम्परा और प्रतिनिधि आचार्य बृहस्पति" नाम का प्रकाशित ग्रन्थ देखा तो मैं सहसा चौंक पड़ा। आचार्य बृहस्पति को सदारंग परम्परा से जोड़ने में मुझे कुछ आपत्ति नहीं है क्योंकि संगीत की वर्तमान धारा का ज्ञान उन्हें उसी से प्राप्त हुआ था परन्तु इससे आचार्य बृहस्पति के ऋषिकत्व कार्य का मूल्यांकन संभव नहीं है। उन्हें तो भरत और अभिनव गुप्त, मतंग और शाँर्ङ्गदेव की परम्परा का महान् ऋषि और संगीत-शास्त्री माना जाना जाहिए।

आचार्य बृहस्पति की संगीत प्रतिभा को उजागर करने वाले अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें "संगीत-रत्नाकर, "भरत का संगीत सिद्धान्त", "संगीत-चिन्तामणि" आदि उनके विद्वत्तापूर्ण अमूल्य ग्रन्थ हैं।

आचार्य बृहस्पति ने संगीत के इतिहास से संबन्धित अनेक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया, जिनमें उनके ग्रन्थ "ध्रुवपद और उसका विकास" महत्वपूर्ण हैं इसी ग्रन्थ पर उन्हें "डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी" की उपाधि प्राप्ति हुई थी। "मुसलमान और भारतीय संगीत" ग्रन्थ भी महत्वपूर्ण हैं और उन्हीं के निर्देशन में उनकी धर्मपत्नी सुलोचना वृहस्पति द्वारा लिखा गया ग्रन्थ "खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार" बड़ा उपयोगी है। आचार्य बृहस्पति ने पत्र-पत्रिकाओं में सहस्रों लेख लिखे, जिनमें उनकी संगीत के प्रति पीड़ा और उसके समाधान के रूप में किये गये अनुसंधान सुरक्षित हैं।

आचार्य बृहस्पति को इस बीच विदेश-यात्रा का अवसर मिला। एक महान् संगीतज्ञ के रूप में साँस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने हेतु हंगरी, रूस और मलेशिया गये। उनके उत्तरों को सुनकर सोवियत विद्वान् स्तम्भित रह गये क्योंकि संगीत, साहित्य और संस्कृति के विषयों में उन्होंने ऐसे दो टूक उत्तर कभी नहीं सुने थे। वहाँ उनका भारी स्वागत हुआ।

उनके साथ ही शिष्ट-मण्डल में जो अन्य सदस्य थे, उनमें संगीत की विदुषी कु० सुलोचना भी एक थीं। श्री बृहस्पति के उस तीखे, तेवरदार और गम्भीर व्यक्तित्व पर और साथ ही उनके संगीत ज्ञान पर वे रीझ गईं। भारत लौटने पर दोनों विवाह-सम्बन्ध में आबद्ध हो गये। श्रीमती सुलोचना बृहस्पति बड़ी शालीन एवं सीधी गृहणी बनी परन्तु वास्तव में तो वे आचार्य बृहस्पति की कला-साधना का मूर्तिमन्त स्वरूप ही थीं। लगातार १२-१२ घण्टे तक दोनों का रियाज चलता रहता। उनके लिए संगीत ही सर्वस्व था। आचार्य बृहस्पति के निधन के पश्चात् श्रीमती सुतोचना जी ने स्वदेश में ही नहीं, विदेशों में भी अपना गायन प्रस्तुत किया और भारी ख्याति अर्जित की है। वे साक्षात् बृहस्पति जी की स्मृति हैं—पूर्णतः संगीत को समर्पित।

साहित्य

आचार्य बृहस्पति जी कहा करते थे, माँ सरस्वती के दो नेत्र हैं, एक संगीत, दूसरा साहित्य। हुआ यह कि संगीतज्ञ साहित्य से दूर रहे और साहित्यकार संगीत से परे हट गये। इसलिए इन एकाँगी कलाकारों ने एकाँगी रूप से ही सरस्वती का स्तवन किया। आचार्य बृहस्पति जी सरस्वती जी के ऐसे वरद पुत्र थे, जिन्हें एक ओर संगीत के क्षेत्र में सर्वोपरिता प्राप्त हुई और दूसरी ओर साहित्य की सभी परम्पराओं को आत्मात् कर उन्हें अपना विशिष्ट योगदान दिया।

हिन्दी काव्य

खड़ी बोली हिन्दी का प्रामाणिक रूप दिल्ली रामपुर के आस-पास का माना जाता है। आचार्य बृहस्पति ने मातृभाषा के रूप में इस भाषा को प्राप्त किया और आरम्भ से ही वे साहित्य की रचना में प्रवृत्त हुए। जैसा कहा जा चुका है कि अपने समय के मूर्द्धन्य कवि-सस्मेलनों को उन्होंने अपनी वाणी से विभूषित किया और उसी प्रकार उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में भी निर्द्वन्द्व रूप से उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उनके हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता और विद्रोह का स्वर प्रमुख है। वर्तमान व्यवस्था के अन्धे और बहरेपन को उन्होंने ललकारा है और मनुष्य के पौरुष को जीवन का आधार मानने का आग्रह किया है। वे नहीं मानते कि यदि शासन अपनी भारत माता के प्रेम पर प्रतिवन्ध लगाना चाहे तो वह

सफल हो सकता है ? क्योंकि माँ के प्रति प्यार तो मनुष्य का स्वाभाविक और जन्मसिद्ध अधिकार है। इसीलिए वे प्रश्न करते हैं—

माँ के प्यार पर प्रतिबन्ध ?

शुभ्र प्राची के अरुण श्रृंगार पर प्रतिबन्ध ?

बृहस्पति जी के हिन्दी-काव्य में अपने अतीत के शूरवीरों से सीधी प्रेरणा ग्रहण की गई है और रणक्षेत्र में कुछ कर जाने के लिए कवि की अपनी मचल यों प्रस्तुत हुई है—

अट्टहासी रुद्र के विषपान की सौगन्ध, ओ माँ !

हम बढ़ेंगे जाति के सम्मान की सौगन्ध, ओ माँ !

बृहस्पतिजी के ओजस्वी गीत आज भी राष्ट्रीय सम्मेलनों में गूँजते हुए सुनाई दे जाते हैं। एक उक्ति स्मरण हो आती है—एक शिकारी ने तीर चलाया, कहीं जाकर अदृश्य हो गया; कवि ने गीत गाया, वह भी कहीं जाकर विलीन हो गया। परन्तु लोगों ने वर्षों बाद सुना कि कवि का गीत बहुत से लोग दोहरा रहे हैं, शिकारी के तीर का पता नहीं चला। शायद किसी को घायल कर गया हो। घायल दोनों करते हैं, परन्तु कवि का गीत निर्माता है, शिकारी का तीर हत्यारा-मात्र। आज भी अपने गीतों की गूँज से बृहस्पति अमर हैं।

बृहस्पतिजी का ब्रजभाषा-काव्य

आचार्य श्रीकैलासचन्द्र देव बृहस्पति का जितना लगाव खड़ी बोली हिन्दी के साहित्य से था, उससे कहीं अधिक उनका सस्कार ब्रजभाषा का था। कारण कि मध्यकालीन और परवर्ती राजघरानों की शोभा होते थे कविगण। दरबार चाहे हिन्दू राजाओं के हों अथवा मुसलमान नवाबों के; ब्रजभाषा-कवियों को सम्मान सभी जगह मिलता था। रामपुर का नबाब घराना भी ब्रजभाषा-काव्य का प्रेमी रहा। इस दरबार में ब्रजभाषा के अनेक प्रसिद्ध, ग्वाल जैसे कवि, आश्रय प्राप्त करते रहे। आचार्य बृहस्पतिजी के पूर्वज स्वयं ब्रजभाषा काव्य के प्रणेता भीथे और वे इन कवियों के अंतरंग मित्र भी थे।

अपने पूर्वजों की ब्रजभाषा-कृतियों और उनकी परम्परा आचार्य बृहस्पतिजी को भी प्राप्त हुई। अवश्य ही उनके घर में खड़ी बोली ही बोली जाती थी परन्तु जब काव्य-रचना का प्रश्न उठता था तो वह ब्रजभाषा में ही होती थी। अपनी संस्कृति और परम्परा के रंग में रँगे बृहस्पतिजी ने जब पहली बार अपना कवि-कण्ठ खोला तो उनकी भाषा ब्रजभाषा ही थी। ब्रजभाषा के कवि-सम्मेलनों में भी उन्होंने अपनी धाक जमा दी थी। परन्तु एक कठिनाई हो गई कि उनका सम्पूर्ण ब्रजभाषा काव्य जो बहु-आयामी और बहु रंगी था, सहेजकर रखा नहीं जा सका। उसका केवल एक अंश ही अब उपलब्ध है, जिसके आधार पर उनके सम्पूर्ण कवि-

व्यक्तित्व का आँकलन नहीं किया जा सकता। हाँ, जो कुछ अंश रूप में प्राप्त है, उससे उनके आंशिक व्यक्तित्व का ही दिग्दर्शन सम्भव है।

ब्रजभाषा-काव्य दृष्टि निक्षेप

आचार्य बृहस्पति के ब्रजभाषा काव्य का एक प्रमुख विषय है इष्ट का स्मरण या भक्ति-भावना। परम्परागत रूप में वे शिव-भक्त थे अतः शिव और उनके परिवार—पार्वती, गणपति आदि की वन्दना, उनका गुण-स्मरण, उनके पारिवारिक सम्बन्धों को लेकर कवि-परम्परा के अनुसार चुहल और उनसे कृपा यश एवं धन आदि की सहज कामना इन छन्दों में की गई है। एक छन्द प्रस्तुत है—

राहु सों बचाय प्रान, चन्द्रकला संभु-सिर,
जाय बसी बापुरी उतैउ दिन चैन ना।
रीझि-रीझि हुलसि गनेस गहि सूँड़ माँहि,
मेलें मुख हरसि लखत दिन रैन ना।
हँसि-हँसि गिरिजा, निकारि धोय गंगाजल,
ईस सीस साजत तनिक नत नैन ना।
टुकुर-टुकुर लखें, घरनी की करनी के,
फल, भोलानाथ मुख निकसत बैन ना।।

शिव-शीश-मौलि चन्द्रकला के साथ पार्वतीजी का यह क्रीड़ा-व्यापार वे विवश होकर परन्तु प्रसन्नता से देख रहे हैं।

माता पार्वती की वन्दना के छन्दों में भक्ति की भावना में गम्भीरता है परन्तु चुहल वहाँ भी छूटी नहीं है। उन्हें देखकर भोलानाथ की गति यह हुई कि वे उनकी 'रुनुन-झुनुन' सुनकर अपनी 'तिटकत-गिदगिन' भी भूल गए। संगीत के स्वरों का कैसा मिठास भरा संयोग संगीतज्ञ कवि ने प्रस्तुत किया है—

आनन बिलोकि भूले जोग, भोग माँहि परे,
हँसति बिलोकि भूले चन्द्रकला दिन-दिन।
नाँची जो उमंगभरी उमा सुकुमार, हँसि,
बाजन मँजीर लागे, किटकिन किट-किन।
भंग की तरंग भूले, गति अंग-अंग लखि,
हँसत अनंग पुलकति अति छिन-छिन।
'रुनुन-झुनुन' सुनि नूपुर मधुर धुनि,
भोलानाथ भूलि गये, 'तिट-कत गिद-गिन।।

शंकर-पार्वती और गणेश के प्रति आचार्य बृहस्पति की जसी भक्ति है, वैसे ही उनकी भक्ति सरस्वती, लक्ष्मी में भी है, जो भवानी के ही अन्य रूप हैं। सीता राम

और हनुमान में भी उनकी भक्ति वैसी ही, उसी रूप में गम्भीर है।

ब्रजभाषा काव्य की चेतना से अनुप्राणित कोई भी सहृदय सुकवि राधा और कृष्ण के लीला-रस का पर्यत्सुक प्रेमी न बन जाय, यह कैसे संभव है? अनुप्रास की छटा और उपमाओं से अभिमण्डित, अनुभव योजना से समृद्ध श्रीराधा के सहज भोलेपन की विभिन्न लीला तरंगों से युक्त यह छन्द अवश्य ही द्रष्टव्य है—

सुधा की सरी-सी, मिसरी सी घोरे हिय माँहि,
फोरि निसरी-सी, चन्द्रवदनी सुमेर कौ।
कनक-छरी सी इक हीरन-जरी-सी, काहू,
करके परस हेत, उभरी-सी छेर कौ।
हिरनी डरी-सी चौंकि परै पात खरकेहु,
उमँग-भरी-सी पुनि, सोचै ना अबेर कौ।
बारुनी ढरी-सी, नयनन माँहि, गैल तकै,
बाबरी-सी होय चलै, मुरली की टेर कौ॥

श्रीराधा तो श्रीकृष्ण के हृदय पर राज्य करने वाली रूप-गुण आगरी स्नेह की गागरी है—

स्वामिनिय बनि तुम राज कियौ, कान्ह हिय,
रूप-गुन-आगरी रही सनेह-गागरी

कवित्त और सवैया के अतिरिक्त पदों के माध्यम से भी बृहस्पतिजी ने राधा-कृष्ण का गुणगान किया है। उनके इन सभी छंदों में भक्ति की गुहार है और मनुहार है लीला-रस की भंगिमाओं की। बृहस्पतिजी का सरल हृदय ही उनकी इन रचनाओं में बोलता है।

वृन्दावन-भाव और भक्ति विषयक दोहे भी उनके इसी कोटि के हैं। कौन वृन्दावन की उन निकुंजों का स्मरण कर धन्य नहीं होता जिनमें राधा-हरि क्रीड़ा करते हैं:

वे निकुंज निसिदिन हरे, लखत न नैन अघाहिं।
नित मुरली, नित गोपिका, राधा-हरि हुलसाहिं॥

मन-दोहनी में भक्ति का दूध दुहकर भरना और उसे हृदय में जमाकर, मथकर माखन बना कर चखना भक्त का परम सौभाग्य है:

भगतिछीर, मन-दोहनी, दुहि-दुहि भरियै चित्त।
जमै चित्त, मथि माखनहुँ, रसमय चाखिय नित्त॥

भक्ति-भावना से संबंधित उनके ऐसे विश्वास एवं रस-भरे दोहों की संख्या भी उनकी रचना में पर्याप्त है।

रसिकता

आचार्य बृहस्पति में जहां सरल भक्ति-भाव है, वहाँ जगत् की, संबधों की, रसिकता भी कम नहीं है। इस रसिकता को भक्त-मन जहाँ हेय मानता है, वहाँ बृहस्पतिजी इसे जीवन का स्वाभाविक धर्म समझते हैं, जो रसनीय है। अतः भक्ति और जगत् की रति को वे एक साथ एक समान रखते हैं। उनकी तो स्पष्ट घोषणा है या तो वे शिवशंकर के पादपद्म में विश्राम पायें अथवा कलकंठिनि वामा अंक में, रहे, इन दोनों में ही वे निःशंक हैं :

नीलकण्ठ पद-पद्म कै, कै कलकण्ठिनि अंक।
होय आसरौ मन-विहग, नाचइ कूक निसंक ॥
निरखि त्रिलोचन-नयन-छबि मृगलोचनि रस-दीठि।
मो नयना नयना बनै, भजै दुःख दै पीठि ॥

इस भूमिका के साथ कवि निश्शंक होकर जगत् के रूप-रस का पान करने में प्रवृत्त होता है। फिर तो उसे अपने प्रिय के चाहे गुण हों या दोष, सभी प्रिय होते हैं—प्रेम का यह स्वभाव ही है :

प्रिय के गुन प्रिय, दोस प्रिय, प्रिय अटपटौ सुभाय।
गोरे मुख लखि तिल सदा, कारौ छबि अधिकाय॥

प्रेम में भीगे रोम-रोम का कोमल स्पर्श मन के अनुभव को उत्साह से भरता है। उसमें न कहीं तनिक कुछ भार लगता है, न उर-दाह होता है—

रोम-रोम कोमल परस, मन अनुभवत उछाहु।
तनिक न भार संभार नित, छिनुक नांहि उरदाहु ॥

संयोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार की प्रत्येक छटा मांसल होकर अश्लील हो सकती है। संकेतों द्वारा अनुभव को व्यंजित करने की कला ही उच्चकोटि के कवित्व का लक्षण है। प्रियतमा का हृदय नेह-निहोरे कर रहा है भिर भी रस में डूबी वह नायिका अपने मुख से कैसे कहे? एक व्यंजना है :

नेह-निहोरे हिय करै, धीरौ गहन प्रभाउ।
पै रस-बूरी कस कहै, निज मुख, चलु, सुख पाउ ॥

आचार्य बृहस्पति की रचनाओं में संयोग श्रृंगार का बहुत सांकेतिक और बहुत कुछ झाँकता हुआ वर्णन है। सभी में अनुभव की उमंग है, इसमें सन्देह नहीं।

वियोग श्रृंगार

कवि के काव्य में विरह भी कल्पित नहीं है, अनुभव-जन्य है। कहीं-कहीं वह

शोक की कोटि को भी छू लेता है। इसका कारण है, बृहस्पति जी के जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना, अर्थात् उनकी धर्मपत्नी साधना देवी की आकस्मिक आपरेशन थियेटर में मृत्यु। बृहस्पति जी का कवि-हृदय उन्हें अपार स्नेह करता था। बिछुड़ जाने पर उनके हृदय पर क्या बीती, यह तो उनका हृदय ही जानता है, अथवा उनकी काव्य-पंक्तियों के माध्यम से पाठक उस वेदना का कुछ अनुमान कर सकते हैं। हमारा यह कहना नहीं है कि उनके काव्य में वियोगश्रृंगार जितना भी वर्णित है वह उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद का ही है। नहीं; सहज रूप से उन्होंने वियोग श्रृंगार भी लिखा है, परन्तु अवश्य ही अपने काव्य में अनेक शीर्षक देकर अपनी पत्नी की मृत्यु का उल्लेख किया है, और उस स्मृति को सहेजा है।

नेह-पाती के माध्यम से अपनी दिवंगता पत्नी का जो स्मरण किया है, वह अत्यन्त गंभीर है :

तज्यौ सरीर न पै तज्यौ, मम वचननि बिश्वास।
जीती बाजी नेह की, हँसिय, न भइय उदास॥
काल-भुजंगिनि, मूढ़ मन, समुझि पुहुप सित माल।
मेल सुकंठिनि-कण्ठ हठि, बिहंसत भयौ निहाल॥

बृहस्पतिजी की —'नेह-पाती'— वेदना का काव्य है। वियोग विवशता का परिचायक है। संयोग में जो सुख था, अब वह कष्टमय हो गया है, क्योंकि प्रिय निकट नहीं यही वियोग की भूमिका है :

मन मयूर अब ना नचै, जीवन तनिक जँचै न।
अगिन सतत यहि तन तजै, जतन करेहु बचै न॥

वियोग में प्रियतम के अलौकिक दर्शन होते हैं, अभी तो मेरे प्रियतम मेरे सामने थे, अब कहाँ चले गए अपनी झलक दिखाकर—

ललकत पुलकित मन सतत, आकुल चहुँदिसि जाय।
कितै दुरे घनस्याम हरि, झिलमिल झलक दिखाय॥

इसमें परकीया की स्मृति को भी कवि ने चित्रित किया है। परकीया की स्मृति मर्यादा है या नहीं, जीवन का एक अनुभव है और आचार्य जी उसे मर्यादा में ही रखना भी चाहते हैं—

रही दूर, पै दूर नहिं, रही चूर, नहिं चूर।
सील सुघर मरजाद हू, इक दिन भये न दूर॥

बृहस्पतिजी का वियोग श्रृंगार बड़ा गहरा है। उसमें विविध भाव-लहरों का मंथन करता हुआ नर्तन है।

अन्य काव्यशास्त्रीय स्थितियों का भी बृहस्पतिजी ने अपने ब्रजभाषा काव्य में वर्णन किया है।

संगीत संबंधी छन्द

आचार्य बृहस्पतिजी की संगीत चेतना से संबंधित छन्दों की संख्या भी उनके काव्य में कम नहीं है परन्तु वे सभी या तो वस्तु-वर्णन मात्र है अथवा जहाँ-तहाँ ये हास्य के विषय बने हैं। एक छन्द तानसेन विषयक देखिए—

तानसेन ऐसौ रह्यौ, वहि जुग महँ गुनवन्त।
मूर्च्छन तत्त्व प्रवीन अरु, मेल तत्त्व मति मंत।।

ऐसे छंद व्यक्ति की प्रशंसा अथवा शास्त्र संबंधी तथ्यों का कथनमात्र करते हैं। हाँ, हास्य संबंधी दोहों में अवश्य ही बड़ा व्यंग्य है और खरापन भी। लीजिए थोड़ी-सी बानगी प्रस्तुत है—

पण्डित—

'ग्राम' गाँव 'जाती' कुसुम, 'राग' नेहु सुर आदि।
'ताल' तार-तरु, बरन रंग, सुति संहिता अनादि।।

× × × ×

भरत, मतंग कहा करहिं, अभिनवहू निरुपाय।
सारंग देवहु विवस जित, जुरयौ मूढ़ समुदाय।।

संगीत शिष्य—

सपनेहु कबहुँ न जिन सुनी, मिमना की मिमियान।
ते सीखत संगीत नित, आवत सीना तान।।

× × × ×

सिच्छक साबुन घिसत नित, गधा घोर है जायँ।
पै धोये - पोंछे सतत, स्वच्छ गधा दिखरायँ।।

उस्ताद—

मुख न दाँत, इक आँत हू, रही न जिनके पेटि।
'चौंकि परी' गावत मियाँ, तान घसीटनि लेटि।।

गायक—

कानन खींचत नामु लै, छिन-छिन चलत कुचाल।
कारौ आँखर भैंस जिमि, गुनियनि गावत ख्याल।।

वादक—

'घन गरजन' जहँ वीर रस, 'रिमझिम' जहँ सृंगार।
'भड़भड़सिंह' पखावजी, भूलि गये यह सार॥
× × × ×
उचकि उचकि बुढ़रा रहे, लड़्यौ मूड़ ते मूंड।
छिनकु न अविचल गोद महँ, हाथी की सी सूंड़॥

नर्तक—

कितै चक्र चक्कर परे, घोटत चक्कर दार।
अजु ढपोरसंखनि तज्यौ, संख-पदुम कौ सार॥

संगीत संबंधी हास्य रस के इन दोहों के पीछे आचार्यजी ने केवल उसकी विरूपता पर बाहरी ढंग से ही नहीं प्रहार किया है, अपितु यह उनकी आत्मा की कचोट है कि भारतीय संगीत को यह क्या हो गया है ?

हास्य-व्यंग्य की चर्चा हुई है तो बृहस्पतिजी के आज की राजनीति से संबंधित छन्दों का उल्लेख भी यहाँ उतना ही आवश्यक है।

बृहस्पतिजी कहते हैं कि आज की राजनीति का कमाल यह है कि लम्बोदर पण्डितों और कटिक्षीण कामनियाँ—सभी को 'पद्श्री' कहा जा रहा है। मोटे और पतले तथा लिंग-भेद का भी विचार किसी को नहीं है—

लम्बोदर पण्डित प्रवर, कामिनिहूँ कटिछीन।
'पदमसिरी' अजु लिंग कौ भेद मिट्यौ तनु-पीन॥

पण्डितों की कृतियों की अवमानना पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं—

धनि—जयदेव भले मुए, बिरचि गीत-गोविन्द।
आजु तोलियत टाल में, ग्रन्थभार सुच्छिन्द॥

अलंकार प्रयोग—

आचार्य बृहस्पतिजी का ब्रजभाषा-काव्य पाण्डित्य के बोझ से दबा, अलंकारों से ठूँसकर भरा हुआ नहीं है। उसमें सहजता है। अवश्य ही शब्दालंकार और अर्थालंकारों से उनका काव्य सहज ही अभिमण्डित है। परन्तु काव्य की सादगी में ही उनकी विशेषता है।

भाषा—

बृहस्पतिजी ब्रज भाषा के विद्वान् थे। वे प्रवाहपूर्ण भाषा के पक्ष में थे अतः तद्भव शब्दों का प्रयोग उन्होंने अधिक किया है। 'ड़ कार' को शायद वे ब्रज-

भाषा की प्रकृति का अक्षर नहीं मानते थे इसीलिए 'बूड़े' को 'बूरे' और घोड़े को 'घोरे' जैसे प्रयोग ही उनकी भाषा में अधिक हैं। भाषा में बनावटीपन कहीं नहीं है।

छन्द—

सवैया, कवित्त, दोहा, सोरठा जैसे छन्दों का प्रयोग ही आचार्यजी ने अधिक किया है सवैया और कवित्तों के विभिन्न प्रकार उन्होंने अपने काव्य में प्रयुक्त किए हैं परन्तु अलंकारों के समान ही छंदों में भी वे कसीदाकारी से बचे हैं। इस दृष्टि से भी उनमें सादगी विद्यमान है। उनके पद भी सीधे और सरल हैं।

आशु व्यक्तित्व

ऊपर मैंने बृहस्पतिजी की विनोद-प्रियता का वर्णन किया है। मैं पुनः कहना चाहूँगा कि उनमें जितना गंभीर पाण्डित्य था, उतने ही वे विनोदप्रिय भी थे। उनका व्यक्तित्व हास्य से सराबोर था। जहाँ बैठते हँसी के फव्वारे छूटते रहते।

सन् १९५२ में एक बार मन उचाट हुआ तो वे मेरे पास वृन्दावन में पधारे। बोले, चलो पहले ब्रजयात्रा करेंगे। सब कपड़े उतार दिये, केवल एक आधा तहमद जैसा अँगोछा और बनियान। गर्मी के दिन थे। चल पड़े पैदल। पूरी यात्रा में हास्य-विनोद। जिस गाँव में पहुँचे, दो-चार शब्दों के परिचय में ही सबको अपना बना लेते।

फिर वृन्दावन जमे। घर के बाहर के चबूतरे पर मोहल्ले और आस-पास के न जाने कितने संगीत प्रेमी हारमोनियम-तबला इक्ट्ठा कर लेते। बस संगीत का समाँ बँधा जाता तो समय का पता भी न चलता। कितने लोग उनके शास्त्र-ज्ञान पर मुग्ध थे।

महान् संगीतज्ञ स्वामी हरिदास की भजनस्थली निधिवन गये। दर्शन करते ही मन में विचार हुआ कि क्यों न इतने बड़े सन्त की स्मृति में अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन किया जाए। सब लोग उनके इशारों पर दौड़ पड़े। बात ही बात में स्वामी हरिदासजी के जन्म दिवस पर एक विराट् संगीत सम्मेलन हुआ। देश के बड़े-बड़े संगीतज्ञ और विद्वान् एकत्र हुए।

निधिवन की खोज आरम्भ हुई। निधिवन की प्राची से सटा हुआ, निधिवन का ही एक भाग है; जो पीछे से बन्द रहता था। एक दिन वहाँ जा पहुँचे बृहस्पतिजी।

अनेक लोग साथ थे। क्या देखा कि वहाँ एक समाधि बनी हुई है पत्थरों की। शीर्ष भाग जो उठा हुआ एक पत्थर ही था, उस पर ऐक तिलक बना था, उस पर लिखा था 'श्रीतानसेन'। सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उस दिन जो गोष्ठी हुई,

उसमें इस विषय पर जमकर चर्चा हुई। हाथरस से प्रकाशित 'संगीत' नामक पत्र में उस गोष्ठी का विवरण छपा है।

नगर में चर्चा फैल गई कि निधिवन के एक भाग में तानसेन की समाधि विद्यमान है। यह भाग एक बाहरी व्यक्ति के अधिकार में है। उन्हें किसी ने सुझा दिया कि अब तुम्हारा स्थान भी तुम्हारे हाथ से गया, तानसेन की समाधि देखकर सरकार इसे ले लेगी। बस, उन सज्जन ने समाधि को तहस-नहस कर जमीन को साफ कर दिया। आज भी उस भूमि खण्ड में कोयले की एक टाल है और कुछ ताँगे-घोड़े बँधते हैं।

आचार्य बृहस्पतिजी द्वारा आरम्भ किया गया श्रीस्वामी हरिदास संगीत सम्मेलन कई वर्षों तक उसी रूप में चलता रहा। कुछ वर्षों बाद अन्य कई संस्थाओं ने इस संगीत-सम्मेलन को अपना लिया। अब भी तीन या चार संस्थाएं स्वामी हरिदासजी के नाम से विराट् संगीत-सम्मेलनों का आयोजन करती हैं, जिनमें से प्रत्येक में अखिल भारतीय स्तर के संगीतज्ञ स्वामी हरिदासजी की समाधि के समक्ष अपनी 'हाजिरी' देते हैं। यह मैंने इसलिए लिखा कि आचार्य बृहस्पतिजी द्वारा अनेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सहज ही किये गये, जिनका सम्बन्ध संगीत के प्रचार-प्रसार से है परन्तु उनका आज कहीं उल्लेख भी नहीं है।

हाँ तो विषय था आशुकवित्व का। उन्हीं दिनों, जब बृहस्पतिजी वृन्दावन में थे, साहित्य-सभा का रंग भी यहाँ जमता। छंद रचना तो जेसे चूरन-चटनी की बात थी। मेरे पड़ोस में मेरे एक आत्मीय रहते हैं—नाम यशोदानन्दन उन दिनों टेलर मास्टर थे। बस, आचार्यजी ने उनका स्वागत किया इन शब्दों में,

धन मेरे भाग जसोदानन्दन।
पहले माखन चोर कहाये, अब हौ वस्त्र निकंदन।।

बोलते ही बोलते पूरा हो गया। फिर कुछ बात बढ़े तो दूसरी रचना का आरम्भ हुआ—

धन-धन वेदोजी के बाप।
जिनके मुख मयँक को निरखत उपजत मन संताप।।

फिर दूसरा पद पूरा हो गया। सैकड़ों पदों की रचना बैठे-बैठे हो जाती। हर कोई खुशी से अपने-अपने पदों को याद कर लेता। अब भी यशोदानन्दन जी बृहस्पतिजी की याद करते हैं तो आँखें नम कर लेते हैं। उनके पुत्र वेदप्रकाशजी एक प्रसिद्ध अध्यापक हैं। उनके नाम से न जाने कितनी रचाएँ अलग से लिखी गई है। ऐसा था आशुकवित्व आचार्य बृहस्पतिजी का। वे हास्य-विनोद की सजीव मूर्ति थे।

आचार्य बृहस्पतिजी ने अपने यश-रूपी भवन का पूरा आनन्द भी नहीं लिया था कि उनका शिवधाम से बुलावा आ गया। यदि वे जीवित रहते तो अपने प्रौढ़ ज्ञान से भारतीय संस्कृति और साहित्य की अपूर्व सेवा करते।

उनका ब्रजभाषा-काव्य अब उनके देहावसान के ६।। वर्षों के अनन्तर आपके हाथों में आ रहा है। मेरी आचार्य बृहस्पतिजी से उनके ब्रजभाषा काव्य के प्रकाशन के सम्बन्ध में वार्ता होती थी परन्तु वह इच्छा अब पूरी हो रही है। मुझे तो लग रहा है कि यह ग्रन्थ छाप कर हम स्वयं आचार्य बृहस्पतिजी को ही अर्पित कर रहे हैं।

मैं साधुवाद करता हूँ उनकी पत्नी बहन श्रीमती सुलोचनाजी का, उनके पुत्र श्री आमोदवर्द्धन का, जो इस प्रकाशन के निमित्त से अथक प्रयास कर रहे हैं और उन सबका जो इस ग्रंथ को इस रूप में छापने में सहभागी हो रहे हैं।

पुनः आचार्य बृहस्पतिजी के कभी न भूल सकने योग्य व्यक्तित्व को नमन करते हुए मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी
एम० ए० पी-एच० डी०
प्राचार्य : इंस्टीट्यूट ऑफ
ओरियण्टल फिलॉसफी
वृन्दावन

दो शब्द

आचार्य बृहस्पति बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे यह बात सर्वविदित है। पर मुझे इसका भान बहुत देरी से हुआ। फिर भी मैं उन सौभाग्यशालियों में हूँ, जिन्हें आचार्य जी के सान्निध्य का अवसर मिला— केवल दस वर्षों तक ही सही। जब भी वे कलकत्ता सरकारी काम से आते तो मेरे पास ही ठहरते। पक्के धार्मिक, सारस्वत ब्राह्मण—होटल में अखाद्य पदार्थों की गंध उन्हें सहन न होती। भारी-भरकम शरीर और भारी-भरकम सरकारी ओहदा देखकर निमन्त्रण देते बड़ा संकोच लगा। पर मैंने एक बार कहा और वे तुरन्त राज़ी हो गए और मेरे घर चले आए। फिर तो उनका नियम ही बन गया कि कलकत्ता आएँ तो मेरे छोटे-से फ्लैट को धन्य करें। उनके आते ही मिलने-जुलने वालों का जो ताँता लगता—सुबह सात बजे से रात बारह बजे तक कि पूछिए मत। साधारण गृहिणी के दायित्व को निभाते हुए मुझे उनके पास बैठकर उनकी सारगर्भित बातें सुनने का अवकाश नहीं मिल पाता। स्वार्थवश एक बार कहा भी कि हमारे कई सम्पन्न मित्र हैं। जिनका बड़ा-सा घर है, वहाँ आपकी व्यवस्था करा दूं पर वे बोले—"बहन मैं कहीं नहीं जाने वाला। मैं सारस्वत ब्राह्मण वैसे भी तुम खत्रियों का पुरोहित हूँ। इस पुरोहित का पेट भी बहुत बड़ा है। तेरा बनाया रूखा-सूखा भोजन मैं पचा लेता हूँ और मेरी 'बक-झक' तू पचा लेती है।" बस तब से इस अनूठे भाई से एक आत्मीय संबंध बन गया। मैं दिल्ली जाऊँ तो क्या मज़ाल कहीं और ठहर जाऊँ! मुझे भी संगीत और साहित्य का शौक। स्वभाव भी कुछ-कुछ 'भैया जी' से मिलता हुआ। वो कलकत्ता आएँ पत्नी सुलोचना जी के साथ। सारा दिन तानपूरे पर स्वर लहरियाँ गूंजती रहें गा फिर संगीत-सम्बन्धी-साहित्य की चर्चा, स्वरों के उद्भव की रोचक कथाएँ, 'मूर्च्छना' आदि विषयों पर मेरी शंकाओं का समाधान, बड़े ही आकर्षक और सरल ढंग से सारी बातें समझा देते थे। भाग्य से मेरे परिवार में सभी को संगीत से रुचि है। मुझे ऐसा आनन्द आता मानों एक चलती-फिरती यूनिवर्सिटी या घूमता-फिरता संग्रहालय मेरे घर आ गया हो। प्यासा कुएँ के पास जाता है, पर यहां तो कुआँ ही प्यासे के पास आ गया है। कोई ऐसा विषय नहीं जिसका अगाध भंडार उनके पास न हो।

एक दिन मुझसे बोले कि अपनी एक नोट बुक दे, कुछ अपनी कृतियाँ लिख दूँ। अंधा क्या चाहे, दो आँखें ! नोट बुक पर संगीत-सम्बन्धी सिद्धान्तों की सरल व्याख्या के साथ अनेकों दोहे, कवित्त, सवैये बृजभाषा में लिख दिए। आनन्द से मेरी आँखें खुली-की-खुली रह गईं। बृजभाषा मेरे गाँव की भाषा, मेरी जन्मभूमि की भाषा। मुझे आश्चर्य हुआ यह जान कर कि बृजभाषा में उनका इतना काव्य लिखा रखा है जो पुस्तकाकार रूप में छप सकता है। विषय भी अनेक, रस भी अनेक। शान्त-रस में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति में भक्ति परक दोहे और आठ-आठ कवित्तों के 'अष्टक'। संयोग शृंगार व विप्रलंभ शृंगार। हास्य-रस के अनूठे दोहे जिसमें उन्होंने संगीत-जगत, घर-परिवार, राजनीति, समाज आदि पर चुटीला व्यंग्य किया है। नीति के दोहे, हमें बिहारी के दोहों की याद दिला देते हैं। 'सूर-स्याम' की मुद्रा से अंकित फुटकर पद आचार्य जी की ही रचना है। उनका कहना था कि मेरे अन्तर में 'सूर' की आत्मा प्रवेश कर उनकी ही भाषा-भाव शैली में रचना करा देती है मुझे पता नहीं चलता क्या लिख रहा हूँ। अस्तु !

आज आचार्य जी के इस भावपूर्ण बृजभाषा साहित्य को पुस्तक के रूप में जन-समाज को सौंपते हुए हमें बहुत प्रसन्नता है। यदि यह संकलन आपको अच्छा लगे तो सारा श्रेय आचार्य जी को है और जो भी त्रुटियाँ रह गईं हों उनका दायित्व हम पर है। यदि आचार्य जी के सामने पुस्तक छप सकती तो कोई त्रुटि की संभावना नहीं रहती।

अन्त में, हम आभारी हैं कलकत्ता की बहन श्रीमती सावित्री कानोडिया के, जिनके आर्थिक सहयोग से इस पुस्तक के प्रकाशन में सुविधा हुई। यद्यपि सावित्रीजी का व्यक्तिगत परिचय आचार्य जी से नहीं था पर ये साहित्य और संगीत में रुचि रखने वाली महिला हैं। आचार्य जी की शिष्या और धर्मपत्नी श्रीमती सुलोचनाजी के गायन से प्रभावित होकर आपने जो भी सहयोग हमें दिया उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। संगीत और साहित्यानुरागी श्रीमान माधोदास जी मूँधड़ा के भी हम आभारी हैं जिन्होंने आर्थिक सहायता देकर अपने बृजभाषा-प्रेम को सार्थक किया। अन्य कला प्रेमियों से भी जो सहयोग हमें मिला है उसके लि ए भी हम आभारी हैं।

रविप्रभा बर्मन

अनुक्रम

लोक गीत सुधा

मंगलाचरण

कै ससि-सेखर-वदन-विधु, कै मृग-चख-मुखचन्द ।
हरहु पाप, भवताप नित, वितरहुं छवि-मकरन्द ॥१॥

जटा भुजग-लहरानि कै, अलक भुजंगिनि-केलि ।
लखि लखि फूलहुं दिनहिं दिन, फलइ मधुर रस-बेलि ॥२॥

निरखि त्रिलोचन-नयन-छवि, मृगलोचनि रस-दीठि ।
मो नयना नयना बनैं, भजैं दुःख दै पीठि ॥३॥

कै संकर-सिर-सुरसरी, कै उरोज-सितमाल ।
पाप-पङ्क नासइ, हरइ, चिन्ता-गरल कराल ॥४॥

नीलकण्ठ पद-पदुम कै, कै कलकण्ठिनि-अङ्क ।
होय आसरो मन-बिहग, नाचइ कूकि निसङ्क ॥५॥

करतल सिव-पिण्डी कबहुं कबहुं पयोधर पीन ।
राजहिं अघहर, सोकहर, भये सम्भु-ढिग दीन ॥६॥

परसि परसि रुद्राच्छ कै, कै उरोज-युग-कोर ।
औसर-जानिनि आंगुरिनि, बिसरहिं दुःख करोर ॥७॥

सरस्वती

एरी बीन-वारी बीनि बीनि डारौ पापपुञ्ज
आभा दै अनोखी मन-मुकुर सुधारौ आजु।
लोक-प्रतिबिम्ब, बिम्ब बापुरे अबिम्बन के
ताहि मैं उभारौ, हिम-बीन आपु सारौ आजु।
डारौ मुख-माहिं बिन्दु जुगल-पयोधरनि
कर फेरि पीठि नेह-दीठि सों निहारौ आजु।
चारौ पुरुसारथ सुखारथ सँजोइ देवि
हेरि हेरि बेरि बेरि पूतहिं उबारौ आजु ॥१॥

तेरौ पूत मात, नित्त सुमिरन-बान गहे
झूमत अनोखे मद नैंकु मन हारै ना।
टारै ना संकेत सपुनेऊ पाइ, पायँ गहै
आलस प्रमाद करि कारज बिगारै ना।
जारै ना हुलास पाय ताप भवसंगर में
तेरौई निमित्त बनि सोक पुनि धारै ना।
दारै पाप-पुञ्ज, तारै पितरनु राम भजि,
फारै तम-तोम नेह नीतिहिं बिसारै ना ॥२॥

गारौ होय जनि, होय तौ तिहारी करुना कौ
बारौ ज्ञानदीप हिय माहिं ऊजरो रहै।
चारौ नीति सोहैं मातु ठौर-ठौर मोरे मन
जारौ कूट-जाल जसु पांयनि परो रहै।
धारौ अंक माहि दिन-रैन आपुनौ सपूत
टारौ विघ्न-बाध, लाभ हाथहिं धरौ रहै।
रारौ होय मधुर, कबौं न तकरार होय
कारौ होय सम्मुख पै दूरहि खरो रहै ॥३।

भंगुर सरीर पाय कीजियै गरब कहा
पै सपूत तोरे बल राजत निसङ्क नित्त।
जानत न, जानन चहत न जु तेऊ भल
जानि-बूझि जे अजान, ते बूरत पंक नित्त।
सम्पदाऊ छोरी निज पुरुखनि जे अबोध
खोदि न निकारि लेयं लखियतु रंक नित्त।
अंध-नैन खोदेऊं न देख पायं हीरकनु
दीपक बरेऊ लेयँ केवल कलंक नित्त।।४।।

जानैं इक राम-नाम, छानैं यहि बूटी रुचि
सानैं हिय नेह-रस, आंखि पहचानैं हम।
मानैं छिनु प्रेम भाय, गावैं दिन-रैन प्रिय
तानैं रस को बितान, लोक सनमानैं हम।
थानैं जानि बात कहैं, दानै देत रीझि-रीझि
खानैं दिखराय पुनि हीरकनु आनैं हम।
ठानैं रार कुटिलनु तानैं हम नाहिं भौंह,
बानै जानि, बिहँसि कपट-जाल भानैं हम।।५।।

गोरे सुख वारी, कर जोरे पूत माँगै नित्त
थोरे आखरनि मोहि अरथ गंभीर दै।
धोरे आपु आय मातु, कोरे मन कागद पै,
भोरे-भोरे नैननि निहारि, लिखु, धीर दै।
घोरि हिय नेह-रंग, बोरे लेखनी छिनुक,
डोरे से खिंचत आहिं छन्द अकसीर दै।
तोरे जोर मुनियन तोरे मोह के कपाट,
मोरे कर ऐसियै जननि समसीर दै।।६।।

खोलि-खोलि मरमु बखानौं मुनि-ग्रन्थनु कौ
पियैं सुकुमार-मति ज्ञान-छीर लोक महं।
बोलि-बोलि स्रौननि जननि छिनु-छिनु आपु,
रहसि लिखावहु लसहु मन-ओक महं।

तोलि-तोलि आँखरनि पावन प्रसाद मोय
देउ दिन-दिन मातु बूरउँ न सोक महँ।
घोलि-घोलि हिय नेह, बोरहु निसङ्क पूत,
बसइँ रसीले छन्द कलम की नोक महँ॥७॥

ठानी मन माहिं जोउ, जानी छिनु माहिं तुम
मानी-पूत-मान-रखौ, बानी नेह सानी दै।
पानी रहै नित्त, पानी सिर धारौ प्यार-भरौ
दानी सुत राजै इमि पितरनु पानी दै।
घानी इक होय अस, खानी ज्ञान-रस मनौं
मानी जाय जग नित अमिट निसानी दै।
रानी गीत-छन्द की जु बानी जानी-पहचानी
नानी मरै मोह की, न बिघनु गलानी दै॥८॥

गणेश

तुम्हरि जननि हमरिउ जननिय, जानि
यहि, इक नातौ हरसित मन भावौ जु।
लखि दान-सुत, मातु-छतियनि उमरत
छीर करुना कौ, यहि सांचु, उर आवौ जु।
अमिय पिवाय मोय जुगल पयोधरनि
अभय दियौ भवानि, बूझि छिन, जावौ जु।
लाज रखौ आज गिरिजा के दूध की गनेस
खोलि नेह-लोचन अनुज पहचानौ जू ॥१॥

व्यास की पुकार सुनि दौरे तुम छिन माहिं
हंसि लिखत गये, जु बोलत चले गये।
हठि-हठि ग्रन्थि जु धरीऊ उनि ग्रन्थ माहिं
ते नहिं सुबुद्धि-बल खोलत चले गये।
अधरन-सीप खुलि मोती-से झरे सतत
आखर जु, लेखनी पै तोलत चले गये।
जुगति-निकाई पै गनेस तुम झूमि-झूमि
बिहँसि-बिहँसि सीस डोलत चले गये ॥२॥

बनहु तुमहि व्यास, करहु गनेस मोय
फेरि कहा नाथ, मोर लेखनी कहूँ रुकै।
राम बनि मोय लखन बनाउ आपुनौ तौ
संग होय नित, मोह डरपि कहूँ दुकै।
रिद्धि-सिद्धि भावज तौ रहउं निसंक नित
सम्पदा कुबेर की न अनत कहूँ ढुकै।
जो पै तुम साधक तौ बाधक न होय जग,
विघन विदारन की निधि न कहूँ चुकै ॥३॥

कबहुँक भूलैं जु जननि घर-काज माँहि
मोय, तौ दिवाय सुधि उनमुख कीजियौ।
कबहुँक संकर जु नार्चाहि हुलास-भरे
मोर सुमिरन करि रंग-रस भीजियौ।
कबहुँक रिद्धि-सिद्धि मान जो करैं, तुरत
पढ़ि-पढ़ि मोर छन्द कोप छिनु छीजियौ।
कबहुंक मोह परि मैं जु बिसराउं राम
नेह सों पकरि कान, मोय सीख दीजियौ ॥४॥

राम-नाम महिमा तुमहि जानी गणपति
बुद्धि के निधान बिधि हुलसि-हुलसि भने।
चूहा-सी सवारी, त्रिभुवन घूमे छिनु माँहि
बलिहारी सूझ की, छिनु न भये अनमने।
मोहीं रिद्धि-सिद्धि गजवदन जुगति-बल
होड़ मायँ वीर तुम, बापउ कछु न गने।
साधन कहा, जु हिय होय सत्त भाव यहै
धारे सिद्धिनाथ नित रहौ मोर मन बने ॥५॥

चारौ, नाथ, देउ पुरुसारथ, अनुज मानि,
सूंड़ कसि बिघन-समूहनु पछारौ ना।
धारौ ना मलिन कलि-मल मूल-छेद करि
हेरि-हेरि हँसि मम मानस उजारौ ना।
जारौ ना छिनुक माँहि जनमु-जनमु अघ
गरजि-गरजि खट-रिपुन सँभारौ ना।
भारौ नाहिं जानि परै काज के पहारहू कौ
सूल बनैं फूल, कछु जुगति बिचारौ ना ॥६॥

गति देहु लेखनिहिं, मति देहु मन माँहि
नति देहु चरननि, सकति भुजन महँ।
रति देहु सुकृतनि, विरति अघनि पाँहि
गति देहु छन्दनि, जुगति अछरन महँ।

छति देहु रिपुनि, प्रनति देहु लरिकनि
सति देहु घरनि, जयति देहु रन महँ।
पति देहु लरिकिनि, भुगति पुनीत देहु
तति देउ सुखनि की, मुकति मरन महँ।।७।।

सुफल फलहिं, बिगलहिं पाप, राम-नाम
गाइ मन-माहिं संस कबहुँ न धारियै।
पूत मानि गिरिजा कौ आपुहि चलिय, जु तौ
बिपतिन माहिं नाहिं छिनु मन हारियै।
संकर से तात, बन्धु जो पै गननायक से
हूजिये उदास नाहिं, कारज सम्हारियै।
डारिये बिदारि सोक, तारियै जू पितरनि
बारियै सुकृति-जोति, अन्धकार दारियै।।८।।

लक्ष्मी

लच्छि हौ निरच्छर न, पुनि सरसुति-बैर
सोहत न तुमहि, विचारउ तनिक मन।
लच्छमी विहार करै सारदा के मुखचन्द
दुउन चहिय नेह, रहिय न उनमन।
कौन कहै 'मूरख तुमहिं प्रिय' जानै जग
ज्ञान के निधान तुम बस किये गुन-गन।
गोद लिए हुलसि फिरिय मातु निज पूत
मेटिय कलंक, आजु तोसिय बिबुध जन॥१॥

कोउ सरसुति-पूत बिगर्‌यौ चलनि देखि
तुम्हरी, सतत मातु अपजसु दै गयौ।
तुम रहीं दूर मद-बूर, सोउ मजबूर
कहि गयौ ऐसौ कि सिला कौ लेख ह्वै गयौ।
बीतियै बिसारौ, हंसि गुनियन नेह करौ
गयौ हरि-धाम, हिय बोय जु बिसै गयौ।
निबरौ जू दोय, पै निहारौ मोय मोदभरी
सुजस बखानिहौं जननि, झगरै गयौ॥२॥

सौति कौ सो पूत मानि लखौ मोय दुख नायँ
पै बनिय कौसिला, रहिय नायँ कैकई।
ह्वै सुलच्छनिय रहि दच्छिन, सदन आजु
राजियै प्रसन्न मन सन्तत प्रभामई।
डारिहौं न बन्द करि तुमहिं तिजोरी माहिं
दिन-दिन दान करि कीरति करौं नई।
दीन-बन्धु-भामिनि लखिय नैंकु दीन-मन
बहुत दिनन देखे कृपन, दयामई॥३॥

चोरन चकारन के घर जाहु निसि माहिं
कबहुँ उलूक चढ़ि बनि पुन्न दाहिनी।
आवहु जननि घुपि-धूप मम गेह तुम
चोब दै नगारन पै होय गजवाहिनी।
साधहु सुकृत, पुनि बाधहु अभाय-दुःख
दाधहु दरिद्र रहि छिन-छिन दाहिनी।
चंचल सुभाय धरौ दूर, अविचल बनि
टरिय न टारे नित नेह अवगाहिनी ॥४॥

सिन्धु की सुता हौ कछु लोक-लाज करौ माय
सतत कुलीननि गंभीरताई चहियै।
त्रिभुवन-नायक कौ नेह पाय, नाहिं छिनु
गरब चहिय, इक धीरताई चहियै।
सोचिय तनिक, जे विनत हरि चरननि
तिनहिं निगोरी का दरिद्रताई चहियै।
तोसहिं जे भगतनु निसिदिन दौरि-दौरि
तिनि कौ तो पुनि ऐसियै लुगाई चहियै ॥५॥

हमहिं बिसास जू विनोदी की प्रिया हौ माय
कबहुंक नाहि भौंह तानिहौ विनोद महँ।
जानिहौ कविन-हिय पावन सनेह-भरौ
राजत हंसीउ जिमि बीजुरी पयोद महँ।
बैन अटपटे कहि डारत सकुच नाहि
ग्रन्थि नाहिं रखैं मन मगनइ मोद महँ।
हँसि-हँसि बोलन पै तीखेऊ कुबोलन पै
इनि दुलराय नित धारियेइ गोद महँ ॥६॥

धन्नि हो लच्छमी निरखि पूत आपुने जु
चपल इते भये जु माय सों हँसी करैं।
बन्धु दीन-बन्धु के तौ देवरइ दीन भये
भावज समुझि बोल मारैं, बिनती करैं।

सुकवि भयौ तौ कहा वैभव सों बैर भयौ
दास हरि के, अनत नाहिं चाकरी करैं।
तुम सो जगत कौन जौहरी, परख लेहु
बात तौ हमउ मात रतनजरी करैं।।७।।

धरम की खान तुम जग्य-जाग कारन हौ
दान की हौ नींव, भूरिभाग की निसानी हौ।
भूपन की सान हौ, उदारता उदारन की
वीरन की विजय, कविन-मुख बानी हौ।
परख सुजनता की हौ चिह्नानी ममता की
जुग-जुग की जननि अमिट कहानी हौ।
सिन्धु की सुता हौ, मातु जगन की, नेह भरे
त्रिभुवनपति की रसिक पटरानी हौ।।८।।

जगज्जननी पार्वती (अष्टक)

डोलि गयो त्रिभुवन, गौरि, तव तप-तेज,
ध्यान भौय भंग छिनु माहिं त्रिपुरारी कौ।
बोलि गयो नेह उन हिय माहिं मूक बैन,
नैन तीसरौ न खुलै खोले चन्द्रधारी कौ।
खोलि गयौ द्वार करुना कौ अनुराग, मातु,
जीत्यौ रूप, गुन, कुल पिय-रिझवारी कौ।
तोलि गयौ भृकुटि-तुलानि तोरि विधि आप,
मंगल कुमारी कौ सुहाग पुनि नारी कौ।।

खुलि गयौ जटाजूट उरझ्यौ अलक-जाल,
केस लखि सीस-नाग सरकि सरकि गये।
कम्प भयौ अंगनि, पसीज्यौ कर पकरेऊ,
मोती से नयन-बिन्दु ढरकि ढरकि गये।
बोल तब कछु, निरखत नत-नयनहि,
हिय दोउ सुख माहिं धरकि धरकि गये।
बिहँसि बचन कहे नेह भरे चन्द्रमौलि,
कसत संकोच-बन्ध तरकि तरकि गये।

आनन बिलोकि भूले जोग, भोग माहिं परे,
हंसनि बिलोकि भूले चन्द्रकला दिन दिन।
नाचीं जो उमंग भरी उमा सुकुमार, हंसि,
बाजन मंजीर लागे 'किट किन किट किन'।
भंग की तरंग भूले, गति अंग अंग लखि,
हँसत अनंग पुलकित अति छिन छिन।
'रुनुन झुनुन' सुनि नूपुर-मधुर धुनि,
भोलानाथ भूलि गए 'तिटकत गदिगन'।।

सन्तत दिगम्बरहिं अम्बर धराये मातु,
गेह के अडम्बरहु बिहँसि पुनि दये।
झूमत गजननहिं चूमत हुलास भरे,
मुदित षडाननहि घूमत नित लये।
भूलि गए जोग, भोग भोगल गृहीन के जु,
बालनु रिझात करि क तुक नित नये।
नेह की समाधि उतराइ बूरे भोलानाथ,
रहे बनमानुसन, मानुस भले भये॥

मचलि षडानन जु रोये बाल हठ करि,
सम्भु हलरावत तुरत पुचकारी दै।
कबहुं डमरू कर धरि 'डिग-डिग' करि,
तोसन चहत पुनि धुनि रिझवारी दै।
एक मुख रोवै बाल तबहुं न बस होय,
छह मुख रुदन, सहज स्रम भारी दै।
तारी दै हँसत गिरिजा नचाय लोचननि,
विधिहू विनोद कियौ संकरहि नारी दै।

राहु सों बचाय प्रान, चन्द्रकला सम्भु-सिर,
जाय बसी बापुरी उतैउ छिन चैन ना।
रीझि-रीझि हुलसि गनेस गहि सूंड माहिं,
मेलैं मुख हरसि, लखत दिन रैन ना।
हँसि हँसि गिरिजा निकारि धोयँ गंगाजल,
ईस सीस साजत, तनिक नत नैन ना।
टुकुर टुकुर लखैं, घरनी की करनी के,
फल, भोलानाथ मुख निकसत बैन ना॥

चूहा दें गनेस कहँ, कण्ठ-नाग दौरै तकि,
ताहू पै मयूर दौरे दूसर सपूत कौ।
रोकैं जस तस पुनि, सुतन सवार करैं बैल पै,
सु टरत न पग, सिंह जू तकौ।

हँसि निज वाहन सम्हारौ पै जननि तऊ,
कछुक मिजाज बिगरत अवधूत कौ।
बन्धन कठिन परे ब्याह करि भोलानाथ,
नेह डोर यहि, कछु धागौ है न सूत कौ।।

हरसि हरसि मन, परसि परसि तन,
दरसि दरसि सुअनहिं सिव सुवदन।
करसि करसि अघ, बरसि बरसि रस,
हँसि हँसि नित सरसि सरसि तन मन।
जननि बसहु इत, तरसि तरसि पुनि,
रहउँ न, मम हिय करिय निज सदन।
कसि कसि कुण्डरिनि डसि न सकत, अहि,
सरिस मरहि दुःख पटकि पटकि फन।।

शंकर

नीचनु कौं अर्धचन्द्र, सोहै चन्द्रभालहू कौ
पापिनु कौं बिसपानु सोहै कै महेस कौ।
नंग बड़े देखियत लोक माहिं क्रूरजन
सुनत बखान कै दिगम्बर के वेस कौ॥
कण्ठ सांप डारे भीख मांगत सँपेरा नित्त
नीलकंठ राजत कै नागिन उमेस कौ।
बलिहारी भोलानाथ दास यहि लीला पै जु
दीन किये आपु सम, आप सबु देस कौ॥१॥

भाल के कुअंक मेटि बालनु करत नित्त
चाल दै अनोखी, मनु सावक मराल के।
हाल के पुछैया, नेह-डाल जल-पंछिनु कौं,
थाल से सजाइ देइँ भुक्ति-मुक्ति-माल के।
काल की चलै न कछु ढाल बने राजैं नित्त
गालहू बजाय कोउ, काटैं फन्द जाल के।
ताल बनै भव-सिन्धु, सालत न कोउ ताप
पालन करहिं जु चरन चन्द्रभाल के॥२॥

जो पै अभयंकर अभय देइ रीझि-रीझि
बिसहु भयंकर न होय मोय बापुरौ।
कंकरहु पूजे जात संकर को नाँव गहि
बंक रहै कोऊ कस रूप जु हिये घुरौ।
आइ प्रलयंकर जु सौखै मोह के कछार
पंक रहै दूरि ज्ञान कमल इतै ढुरौ।
संक रहै नाँहिन असंक रहै नित्त चित्त
ईस अंक रहै, काल डरहि कहूँ दुरौ॥३॥

दास को न बल और एक बल तेरौ नाम
पास को न ज्ञान कछु आसरौ उजास को।
खास कोउ नाहिं गुन, गुन-गन-गान इक
आस कौ अधार भयौ, अमिय निरास को।
हास को भरोसौ अरु सरस विलास को उ
वास को उ मन माहिं, रहइ उदास को।
प्यास कोउ नाहिं रहै, बसौं पद-पदुमनि
रास को रसिक होउं, बावरो हुलास को ॥४॥

बूरत रहे जु दास विपति-भँवर माहिं
तुरत उबारन तिनहिं और आयौ को।
सरस परस लहि रावरो उमेस कहौ
भवताप माहिं छिन, इक मुरझायौ को।
जटिल कठोर फन्द दीन-कण्ठ माहिं परौ
जटाजूट धर, तुम बिन सुरझायौ को।
जो पै सुरझायौ तुम नेह भरी आंगुरिनि
काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद उरझायौ को ॥५॥

आगें करि जननु, हुलसि नित ज्ञानरासि
आपु वितरे महेस, कीरति तिन्हैं दई।
रहे ओट, खोट दूर करि-करि दीननु को
कुन्दन करे गरीब, जुगति नई नई।
हास की उ रास की उ जुगल-बिलास की उ
थारी-सी सँजोय दई सरस सुधामई।
नाद के अखिल रूप उमरहिं छिनु-छिनु
तिनि मुख, जिन हिय आपुन छबि छई ॥६॥

गान दै मुनिनु, ज्ञान दै रिसिनु, रसिकनु
कान दै, सुकवियनु गुन-सनमान दै।
मान दै अकिंचननु, प्रानदानु अमरनु
तान दै गुनिनु, प्रमदानु मुसकान दै।

कान दै कुलीननु, निदान दै दुखीजननु
दान दै सुऔखद, सरस अनुपान दै।
पान दै अनोखी मदिरा कौ मोय राखौ नाथ
जान दै नई-सी, रसखान उमँगान दै ।।७।।

छीजियै छिनुक माहिं जनमु-जनमु अघ,
रुचि रुचि, उमँगि-उमँगि रस पीजियै।
कीजियै निसंक हरि कारज हुलास भरे
सुमिरि-सुमिरि चरननु, नेह भीजियै।
जीजियै निमित्त मानि आपुनौ सरीर नित्त
बिपति रहै न कोउ रामनाम लीजियै।
मींजियै न हाथ, करतल रतनउ पाय
संकर सहाय फेरि कस न पतीजियै ।।८।।

जगज्जननी सीता (अष्टक)

सिय सुमिरेइ, छिनु माहिं अनुपम छबि
आवत गँभीर भाय धारे मोर नयननि।
मूरतिमती पुनीत साधना-सी सत्तमयी,
धीरता सरीर-धारिनी-सी, मूक बयननि।
अकथ कहानी-सी अचल सील की कहत,
करत सिकायत न देवर की सपननि।
जोग माहिं, दुसह वियोग माहिं नेह-सनी,
राम-राम जपति सतत दिन रयननि।।

असह वियोग की न गांस होय मन माहिं,
दारुन अरण्य की चुभैं करोर काँकरी।
नाहिंन बिछोह की दरार जु बिदारै हिय,
चरननि सहिय बिबाइन की फाँक री।
सकल पदारथन सुख पिय-मुख लखि,
सांचु यहि निरखि परखि जिय टाँक री।
सोचि सोचि हुलसि कहत सिय राघवहिं,
सुखद विपिन जहँ नाहिं गली साँकरी।।

चीवर तजेऊ सोही वन के वसन धरि,
नन्दिनी जनक की कनक-दुति झलकीं।
अमित हुलास मन, हास पुनि अधरनु,
नित पिय-संग जानि बन उत ढलकी।
कीरति की विमल पताका-सी फहरि मनु,
भई नेह गागरी, जु छिनु नाहिं छलकी।
खल की करनि सों धरनि की सुता अधीर,
नाहिं नित जानत, खबर नाहिं कल की।।

लोक-लाज करि बहुराये तुम हनुमान्,
लंक सों अकेले, सहि दारुन बिरह-दुख।
लोक-लाज करि राम कटुक वचन कहे,
रावन हतेऊ, भये, छिनुक न उनमुख।
लोक-लाज करि तुम परीं लपटन माहिं,
ईंधन कियौ सरीर, पाय प्रानपति-रुख।
लोक-लाज करि राम तुम-सी प्रियाऊ तजि,
गाज लोक पै गिरी, लोक दियौ किन सुख॥

दुहिता धरनि की, छिमा की नित्त अवतार,
छोरेऊ संतोस मन, तऊ कछु और ना।
छिनु छिनु गुनन-निधान राम लखे हिय,
सही चुपचाप, कियौ बिपति पै गौर ना।
बसे मन माहिं नित, सील मरजाद तप,
धीरताई, तिनहिं अनत अस ठौर ना।
लोक-लाज परि करनी जु करी भूपन की,
राम तौ रहे का जानकी के सिरमौर ना॥

पावन हवन-जोति-सी विराजै मन माहिं,
तेज-पुंज-पूरी बूरी नेह माहिं राम के।
कुलवधू सूरज की सूरजमुखी-सी भई,
तप के विरल मद सुख भूली धाम के।
पिय बसे हिय माहिं पुलकित छिन-छिन,
सतत संजोग उत, भोग कौन काम के।
जपे आठो जाम रोम-रोम लिखि गयौ राम,
तरति पयोधि सिय इक बल नाम के॥

डोलि गई धरनिउ लोक की करनि लखि,
पुनि पुनि परसै, पिसै करै पीसनौ कहा।
लाडलीहिं लखि गयौ माय को करेजौ फटि,
जनम-दुखारी कौ बहुरि टीसनौ कहा।

सतत संदेह-भरौ लोक नांहि सिय-जोग,
लै गई सु अंक भरि, इत खीसनौ कहा।
फीकौ सो जगत भयौ, राघव लखैं विकल,
नैन जोतिई गई तौ पुनि दीसनौ कहा।।

मोर मन-मन्दिर बिराजहु उमंग-भरी,
राघव-दहिन-अंग सोहैं पुलकित मन।
भरत, लखन, रिपुसूदन हुलास भरे,
ढारइं चंवर, मुद झूमइं अमरगन।
हरसि पखारइं चरन अंजनी के लाल,
करइं पुनीत हरसाइ मोर कनक।
हुलसी के सुत उपजाय राम नाम नेह,
मोउ से कराय नाम धुनि, राखि निज पन।।

राम

राघव सुमिरि, मन ऐसी कछु आवत जु
नाहिं कछु बोलियै, अनोखे मद झूमियै।
घूमियै ई अन्तर, निरन्तर मगन रहि
ढरि चुपचाप, उनि चरननि चूमियै।
जस अनुभविय, बरनियतु नाहिं तस
कहि कहि बिरथ, रुई-सी मनु तूमियै।
सिर परसहिं जु हुलसि करुनानिधान
सेस की सी सेज मोय होय यहि भूमि यै।।१।।

अमित सुगन्ध नित अन्तर उठै, दिगन्त
सिमिटे से आवत, सुकृत मनु छलकत।
उभरत कछु, छिनु भरत अनन्द अति
आवत कहि न पुनि छवि इक झलकत।
कबहुं-कबहुं नीर भरि इन लोचननि
उमरि-घुमरि घन-बिन्दु जिमि ढलकत।
निबल के बल राम सुमिरेई नेह-भरे
आवत, जुरत पल माँहि सब खलकत।।२।।

भगतबछिल देयं भगति हुलसि छिनु
नतरु जनन मन मुद उपजावै को।
धीर देयं परसि अधीरन कौं, उन बिन
निरखि सदय दीठि दुखहिं भजावै को।
खोलि-खोलि पातक बखानियै सरल भाय
नाहिंन डरिय, उत मूरख लजावै को।
ऐसौ प्रभु पाय बिसराइये न कबहुंक
बिरथ सहिय ताप जगत पजावै को।।३।।

राम कौ चरित ऐसौ जग माहिं अनुपम
परखै जु ताहि अस उपज्यौ निकस ना।
बुद्धि बापुरी न तहं पुनि कछु काम करै
रिसिनयनन कोऊ तहं कछु बस ना।
अगम अगोचर जु कह्यौ स्रुति गाय-गाय
ताहि कौ तौ व्यापै जग जस-अपजस ना।
कौन कहै सिया बिसराई राम इक छिन
मूरतिउ भई ताहि प्रिय, कोउ अस ना।४।।

जो पै कण्ठ दियौ राम, हुलसि-हुलसि मन
सुधि-मद बूरि नित नाम गुन गाइयै।
पाइयै परम सुख पावन रखिय हिय
जित जाइये सुगन्ध उत उपजाइयै।
छाइयै बिबुध मन, ध्याय ध्याय अमियहि
मानव-जनम-फल लहिय, लहाइयै।
न्हाइयै उमंगि हरि-करुना-सरोवर में
केलि सी करिय हँसि जननु न्हवाइयै।।५।।

जनम - जनम - सुकृतन - फल उमरै जु
होय हिय नेह हरि-पद-पदुमन सों।
कलि-मल कठिन जकरि पुनि नायं सकै
धार बनि नामऊ बताय डारै मन सों।
छिनु-छिनु बढ़त, आनन्द रोम-रोम खरो
होय तनु-कम्प, कोउ राखत जतन सों।
राजत रतन सो जु विमल उजास करै
निसदिन जोति उपजावै कन-कन सों।।६।।

निबल को बल नाहिं, बिकल को कल नाहिं
आसरौ प्रबल नाहिं, जग माहिं हल कौ।
विरमत खल नाहिं, मीतन कौ दलं नाहिं
हिय सो तरल नाहिं, उतरु न छल कौ।

अगिनि कौ जल नाहिं, विपति कौ तल नाहिं
सुखमय थल नाहिं, ज्ञान नाहिं पल कौ।
लखियतु मल नाहिं, रोये कछु कल नाहिं
राम पै विरल नाहिं, सुमिरेइ झलकौ ॥७॥

दोस नाहिं लखै, रोस नाहिं जिय इक छिन
पोसन करत नित ऐसौ जू उदार को।
जोग-छेम लखै, प्रेम-रस चखै झूमि झूमि
हँसि हलरावै दुलरावै, सिन्धु प्यार को।
आपु करै सब, जस देय प्रान दीनन कौं
सेवकनु ईस करै, अस रिझवार को।
सोइ जु खिवैया, लहरनु चीर नाव चलै
बिरथ करिय मन भय मंझधार को ॥८॥

हनुमान

अंजनी की नैन-जोति कौं सुहाने अंजन से,
पार्पहि प्रभञ्जन से, पवन-सपूत हौ।
खंजन से नैननि जनक-नन्दिनी के तुम,
रंजन, निरंजन के सुख-दैन दूत हौ।
गंजन विपत्ति के, प्रपत्ति के उदाहरन,
काम के न बस भए नाथ नित्त पूत हौ।
भंजन हौ विदित पहारन के हनुमान
सन्त हौ परम, निरमोह अवधूत हौ ॥१॥

भगतन-गुरु, पै सखाऊ बनि छिनु-छिनु,
पद भूलि आपुनौ बिनत नित आवौ जू।
राम-नाम-धुनि पै तुरत तुम रीझि-रीझि
दास-हिय जुगल-छविहिं पधरावौ जू।
झूमि - झूमि नाचि, हरसि - हरसि मन
सेवकनु गति देय हुलसि नचावौ जू।
गावौ जू विमल गुन हरि के मगन होय
नेह करि-करि पुनि हमहिं गवावौ जू ॥२॥

हुलसि-हुलसि वीर ! मोय हुलसाउ नित्त
चित्त दै हरि-चरनु कारज मुदित करौं।
पाप-ताप नासहु, बिनासहु जटिल मोह
त्रासहु अरिनु, ज्ञान-छीर वितरित करौं।
भुजनि प्रबल करि हिय कलि-मल हरि
मनहिं अचल करि, रामधुनि नित करौं।
धरौं न संदेह-जाल, देह-जाल छूटै पुनि
राघव - पद - पदुम सिर सुरभित करौं ॥३॥

तुलसी हमार, तुम तुलसी के, राघव जू
तुम्हरे, न संसय तनिक मन मोर आजु।
हँसियत जानौं आपुनी, पै सुनौ हनुमान
छोरिहौं न तुलसी के दामन की छोर आजु।
बाल-हठ जानौ कै समुझि पुनि मूढ़-हठ
पूरन करेई निसतार गहि डोर आजु।
बरजोरी मानौ जू तौ धरनोऊ देय कालि
विनति करत हंसि दास कर जोर आजु।।४।।

परम अचारज हौ गीति के ऊ नीति के ऊ
भगति पुनीति के ऊ और कहा चहिये।
बालमीकि भनत पवनसुत नाद के
निखिल रूप जानत रहत मुदित हिये।
साछी पाप रासिऊ जु नाहिन बिसास करै
कौन ऐसौ मूढ जग, तिहि कहा कहिये।
नर हौ कि बानर हौ, सोचि-सोचि कोय मरै
मोय तौ अनूप रूप बानरहि रहिये।।५।।

विनतहिं विनत, भगत सिय राघव के
छिनुक तनत भौंह लखि दानव-दलनि।
गरजि बनत काल, गनत न अरि-जाल
सतत प्रनतपाल, मोह-जालई खलनि।
अनत न मोय ठौर, रसिकनु सिर-मौर
आवत तुरत दौर, वितरत सुफलनि।
खनत विपति-मूर, कबहुँक नाहिं दूर
अघनु करत चूर, बल देय निबलनि।।६।।

धारै को सुअंक माहिं मेटि कै कलंक छिनु
तुम बिन कहौ नेह-दीठि सों निहारै को।
हारै को, सरन गहि रावरी पवन-पूत
तुम बिन विपति-पहारन बिडारै को।

डारै को प्रपंच माहिं आपुहिं तुमहिं भूलि
तुम बिन हिय ज्ञान-दीपहिं पजारै को।
जारै को जटिल भव-जाल हरि दासनु कौ
तुम बिन राम-बल बिगरी सुधारै को ॥७॥

जो पै राम-नाम आसरो भयो तौ मन माहिं
रहिय निसंक, बनिहै न बिगरी कहा?
जो पै हनुमान मानियै सखा तो सोचिये जू
बीतिहै न बापुरी अमंगल घरी कहा?
जो पै काज आपुन करावन चहैं तौ राम
जोग-छेम देखिहैं सो, तुमहिं परी कहा।
जो पै चित्त माहिं जानौ आपुहिं निमित्त इक
सोचत रहत पुनि बुद्धि बावरी कहा? ॥८॥

राधा

सुधा की सरी-सी मिसरी-सी घोरे हिय माहिं
फोरि निसरी-सी चन्द्रवदनी सुमेर कौं।
कनकछरी-सी इक हीरन-जरी सी, काहू
कर के परस हेत, उमरी-सी छेर कौं।
हिरनी डरी-सी, चौंकि परे पात खरकेइ
उमँग-भरी-सी पुनि, सोचै ना अबेर कौं।
वारुनी ढरी-सी नयनन माहिं, गैल तकै
बावरी-सी होय चहै, मुरली की टेर कौं ॥१॥

स्वामिनिय बनि तुम राज कियौ कान्ह-हिय
रूप - गुन - आगरी रहीं सनेह - गागरी।
हरि कौ दुलार ऐसौ काहि मिल्यौ जग माँहि
कौन उपजी त्रिलोक, जाकौं अस भाग री।
गोद परी गौरव सों, नेह के गुमान-भरी
सोई सुनि-सुनि कौन मधुर बिहाग री।
सुमिरि-सुमिरि तोर केलि-कथा अजहूँ तौ
रसिकन मन उपजत अनुराग री ॥२॥

भये अवतार तौ अनेक हरि के परंच
नाचे कबहूं न ऐसौ नाच त्रिभुवन पति।
सतत नचाय चर-अचर गुमान भयौ
नाचि-नाचि ब्रज माँहि भोगत करम-गति।
विनती कराई जनम-जनम औरन तें
तुम चरननि परि तेऊ करत बिनति।
लीला लीलामय की हौ राधिके सुजान तु
समुझि परै न कछु अजहुं थकित मति ॥३॥

सुरन-समूह तकै बावरौ-सो केलि-कला
विधिहु भुलानौ लखि-लखि हरि-करनिय।
राधिका के राजु, महाराज भये सेवक से
हरसि-हरसि केसजाल झारैं धरनिय।
रहे जग-तारन उधारन जु दीनन के
सोइ हुलसत पाय पाय नेह-तरनिय।
माया मायामय की न जानी जाय काहू बिधि
सुमिरि सुमिरि हरसिय, कस बरनिय॥४॥

करत रहे जु मनमानी गलियनु माहिं
कुंजनि पकरि कान्ह, तुमहि सम्हारे जू।
मुरली की टेर बिस भई ब्रजनारिन कौं
बैन-बीन बोलन सों तुमहि सुधारे जू।
नैननि उरझि हिय-पलकाय पाय पुनि
सोये नित सुख भरि जगके सहारे जू।
जितत जितत सुर-नर-मुनि-गन-मन
थकि गये, भली भई, राधिका सों हारे जू॥५॥

राधिकाई कहा, तिहि बल नित राज करैं
गोपिउ हुलसि, नटबरहिं नचावैं जू।
नेह-सी अपार निधि पाय कोन सूम बनै
राजरानी हँसि हँसि रासहिं रचावैं जू।
जो पै सन्तत अनन्त दास बनि पायँ परौ
पूरन खरचि पुनि पूरन बचावैं जू।
छिनु खिंचि आवत अमरगन मोद-भरे
होरी कौ सरस रंग नागरी मचावैं जू॥६॥

सोरह सहस रानी रहीं द्वारिकापुरी जु
आठ पटरानिउ जु ऊंचे-ऊंचे महलन।
परम प्रवीन रूप-रस-गुन भरी नित
सोचत रहत ब्रजनागरी के गुन-गन।

'अजहुं न भूले ब्रज' कहत मनहिं मन
कबहुं कबहुँ लखि माधवहिं उनमन।
राधिका सुघर नवनीत लियौ रुचि-रुचि
छाछ पै गरब करैं हम हुलसित मन।।७।।

मुख निकसत 'रा' के रुकमिनि चौंकि परैं
'धा' कहत आपुहिं, हरि जु 'राम-राम' कहैं।
स्वामिनी उतैऊ राधिका रहीं अनोखे भाय
जादू बोलै सिर चढ़ि, दोउ मिलि नाम कहैं।
धारा सी उलटि आवै मन माहिं नेह-सनी
राधा बनि जाय 'राधे-राधे-राधे' स्याम कहैं।
निपट अकेले, भरे महलनि ब्रजचन्द
मन माहिं ब्रज की कहानी आठौं जाम कहैं।।८।।

कृष्ण

बरनौं ललित रूप, कै सुहाने सील-भरौ
मुरली की धुनि, कै अनोखी चक्रधर छवि।
नचनि मधुर कहौं, कै नचायो लोक-नाच
जसुदा कौ पूत बरनौं कै जदु-कुल-रवि।
मोर को मुकुट कहौं, कहौं कै सुभट रूप
माखन-चखनि कहौं, कहौं कै पुनीत हवि।
बोल तोतरे कहौं, कै गीता-ज्ञान अनुपम
चकित विचारै मन, मोहित सकल कवि ॥१॥

हरे हरे पातन पैं माखन-सी सेज वारौं
वारौं विरुदौ'लि ग्वाल-बालन की टेर पै।
वारौं जमुना-जल पै सीतल कलस-जल
अंगराग वारौं धूर-माटिन के ढेर पै।
वारि डारौं विमल दुकूल कमरी पै नित
वारौं मुकुट मयूर-पंखन की फेर पै।
द्वारिका को कहा तीन लोकहूँ को वारि डारौं
राज, गोकुल पै, दही माखन की छेर पै ॥२॥

कहु काहे ठगी-सी चितै चहुं ओर, न धारत है मग री पग री।
अब वे दिन बीति गये जब कोउ न देत चलै डगरी डग री।
मग री नहिं सूझत नैनन नीर, कहै जगहूं मग री मग री?
अजहूं न उसांसन सों सखि वे पिघरे, मथुरा नगरी नगरी ॥३॥

जित होत उसारन केलि-कथा सजनी उत लागत कान जरे।
मन बूरत प्रेम-पयोनिधि में, उत वा निरमोहि को ध्यान धरे।
दृग फेरत नैन रसौहें भये, पलकानि की ओट में आनि परे।
बस, बीर, हमारि कहा कहिये, अब दीजिए सीख, को मान करे ॥४॥

'मधु-गुंजन-गुंजित कुंजन माहिं, कहूं इत मारग आय गयौ।
कबहूँ यहि कूल-कदम्ब कि छांह, सखी मनमोहन भराय लह्यौ।'
इहि भांति जबै वृषभानु सुता, तरु कों हिय सों लिपटाय कह्यौ।
सिगरो बन बाँस को बाँसुरी-रूप, धरे, जिय सों बिरुझाय रह्यौ ॥५॥

फुटकर

(अभिधामूला व्यंजना का उदाहरण)

हरि सेस के पायं कहा परते ? कहा लाइबे कों पुनि मन्दर धावते।
करि कोउ सखा निज कच्छप कान्ह, कि बारिधिहू पुनि जाय मथावते।
नंदनन्द कि नन्दनहू फिरि फेरि, कहा लखते नित चन्दहिं चाव तें।
कहूं जावते लैन सुधाहि कितै, जु न मानिनि को मधुराधर पावते ॥६॥

दीन मलीन रु छीन बिलोकि, भयौ मन लोगन एक कहानो।
बात बनी बिगरी जग सों, अस बात की बात में बैर बिसानो।
कीन भली बिधना बिध ना रखि, कीनो भली बिध नाम दिवानो।
कोउ दिवानो न जानत मोय कि, प्रेम की पंक सों अंक भंरानो ॥७॥

दास तुम्हरोइ, तुम्हरोइ मनु तुम्हरिय
इन्द्रिय-सकल, नाथ, पुनि मोय का परी।
बिहँसि लिखावहु जु चाहौ तौ कछुक नित्त
लिखहुँ न छन्द, हुलसि करहुँ चाकरी।
जो पै आप करहु कृपा तो अकर कछू न
फुरिहै सुमति, रहै छन्द-सम्पदा खरी।
लेखनी सुछन्द गति चलिहै, मरालिनी-सी
महिमा - सरोवर - तरनि गुन आगरी ॥८॥

पदावली

(१)

हरिहिं न नेह छोरि कछु चहिये।
राग-भरे बैननि खिचि आवत, दौरि पद-कमल गहिये ।।
हरसि-हरसि उर माहिं सुमिरि हरि, जनमु-जनमु अघ दहिये ।।
तन-मन अरपि, अकाम निरन्तर, जस राखैं तस रहिये ।।
जित हरि, हरि-पद-पदुम-भंवर उत, मंडरावत मुदित हिये ।।
सूर-स्याम प्रभु नाम, अमित बल, पुनि अचरज का कहिये ।।१।।

(२)

धनि जे स्याम-नयन-अनुरागी ।
चरन-कमल-रस-वास-मगन-मन, मुदित परम बड़भागी ।।
मिले दीठि सो दीठि जु अँखियाँ, रहत नेह-रस-पागी ।।
मोह-रजनि तिनि कबहुँ न व्यापत, रहत सु निसदिन जागी ।।
लीला-गान-डोर हरि चरननि, रहत निरन्तर लागी ।।
सूर-स्याम तौ घरहिं बिजन बन, रागिहु सतत बिरागी ।।२।।

(३)

का हमरे तुम्हरे हरि औरै।
सरिस-बिसरनि लखि मदिप बापुरौ हू भुज भेंटन दौरै ।।
जितै होत हरि-नाम-गान नित, उत नित पावन ठौरै ।।
आवत सुरगन मगन भये मन, ठाड़ रहै कस पौरै ।।
कोकिल कूकत लहि रसाल-तरु, बौरी ह्वै लखि बौरै ।।
सूर-स्याम जित रस-निरझर उत, रहत रसिक सिर-मौरै ।।३।।

(४)

पुनि पुनि मन अचरज का करिये ।
अगम अगोचर लीला हरि की कबहुँ संक नहिं परिये ।।
जड़ दिहहि जो सतत देय गति, सो चेतन उर धरिये ।।
भूल गहे सबु डारनि समुझिय निज बस तनिक न डरिये ।।
देस-काल-दिसि-बन्धन उत कित नित सतजुगहिं विचरिये ।।
सूर-स्याम अनुपम लीला सुख, लहि लहि मुदित बिहरिये ।।४।।

(५)

मूरख कौन हरिहिं गत भाखै ।
अजहुँ स्याम ब्रजवनिता-मण्डल, रहसि रास-रस चाखै ।।
कलित-कलिन्दी-कूल-कदम्बहि, चढ़्यौ चीर कर राखै ।।
अन्तर कछू न रखि रुचि तनुहिं लखै सींचत अभिलाखै ।।
लोक-लाज करि को हरि संमुख, ढाँकि अपुनपौ भाखै ।।
सूर-स्याम तन-मन अरपे पुनि, बच्यौ कहा निज पाखै ।।५।।

(६)

नाहिंन चहिय एक छिनु डरिबौ ।
हरि-पद पदुम-पराग लहे कछु, कठिन नाहिं भवसागर तरिबौ ।।
धरम करम यम-नियम यहै इक, निसिदिन सन्त चरन अनुसरिबौ ।।
बूरि-बूरि रस, झूमनि छिनु छिनु, लीलागान अमिय हिय भरिबौ ।।
सुमिरि सुमिरि छबि, गाइ गाइ जसु, मगन भये हरिचरननि ढरिबौ ।।
सूर-स्याम हरि देहिं कृपा करि, जनहिं जु फेरि कहा कछु करिबौ ।।६।।

नयन

मुरली-धुनि कान परी जब तें, तब तें चकि से चहुँ ओर निहारत।
ठिठकैं डग द्वै चलि ये जब ही पग, दीठि तबै पद-चिह्नन डारत।
नित गैल तकैं अगुआ बनि कै, कछु देखत आन न, बिस्व बिसारत।
सखि नैनन बान परी बिगरी, उनके ढिग जाय झुकैं करुनारत॥

सखि कूल-कदम्ब करील के कुंज, सो गोकुल-ग्वारन की कमरी।
बर बेनु-निनाद बहै जमुना, पदचिह्नन-चिह्नित ग्राम-गरी।
सुधिदायक जो कछु देखत ताहि, अघात न हैं दिन-रैन अरी।
रहिहैं तब लाज के भार झुकी, अइहैं जब वे, अँखियाँ हमरी॥

भक्ति

भगति न जतननि ऊपजै, ईसकृपा तिहि मूल।
आरत ह्वै विनती करिय, आनि सबै निरमूल।।१।।

भगति - भाय जिय ऊपजे, छिनु छिनु बढ़त अनन्द।
कछुक न बिलग लखात जग, मन बिचरत स्वच्छन्द।।२।।

भगति नसावत सोक-दुख, चिन्ता-गरल कराल।
सकल पदारथु कर धरे, रहत आपु ततकाल।।३।।

भगति नसैनी मोह की, भगति नसैनी सुर्ग।
भगति - तरनि उतरिय छिनकु, जगत नीरनिधि दुर्ग।।४।।

भगति - मातु सन्तत करत, निज सुत कौ उपकार।
गोद लिये हरसति फिरति, लांघत विपति-पहार।।५।।

भगति - मसी हिय घोरि नित, लिखियै अनुपम छन्द।
धन-कीरति-बल-वित्त, अग, बढ़इ, छांड़ि गति मन्द।।६।।

भगति-बनी की छवि निरखि, बिगरी बनत, न संक।
गई बनी नित संचरत, नवल बनी परजंक।।७।।

भगति न छोरिय छिनकु जग, अमिय मूरि जिय जान।
भुगति मुगति दुइ बसत इत, यहि निसंक मन मान।।८।।

भगति - सखी नित - नित तरुनि, धरे अनोखे रूप।
जे यहि रूप छके तिनहिं, तकत बापुरे भूप।।९।।

भगति न कबहुँ वियोगिनी, करत नित्त संजोग।
रहसि न जानत जे जगत, सोइय भोगत सोग ॥१०॥

भगति बड़ी भगवान तें, इहिं बस खिंचहिं निदान।
वेदनु कौ नवनीत यहि, घोसत यहै पुरान ॥११॥

भगति बड़ी नित मुगति तें, यहि रस चाखत सन्त।
बसत ईस-सह भगत-हिय, छिनु-छिनु मन हुलसन्त ॥१२॥

भगति-छीर मन-दोहनी, दुहि-दुहि भरियै नित्त।
जमे, चित्त मथि माखनहुं, रसमय चाखिय मित्त ॥१३॥

भगति-माल नित सोहनी, मन-मन्दिर पधराय।
हरि मूरति, नित अर्पियै, जो न कबहुँ मुरझाय ॥१४॥

भगति-सुरसरी बूरियै, उतरिय, भय कछु नाहिं।
ओत-प्रोत तन-मन करिय, पाप-पुंज बिनसाहिं ॥१५॥

भगति सयानी अति सुनहु, कबहुँक भूल करै न।
खोलति छिनु अन्तर नयन, करत चाँदनो रैन ॥१६॥

भगति सराहिय कौन बिधि, जिहिं बस कीन्हें ईस।
गुनगन तिनि जाने कछुक, जिनि सुमिरे जगदीस ॥१७॥

भगति-भाय बूरे, तरहिं, अनायास दुख-भौंर।
कहा निगोरो जगत नद, ढरति अपछरा चौंर ॥१८॥

भगति-वितान तने कहा, दुक्ख बादरन-बान।
बजर-जर ि छ भेदियत, नहिं तिनुकनि, सचु मान ॥१९॥

भगति बड़ी जग महँ प्रबल, मनु दुर्गा-औतार।
कामादिक असुरनि तुरत, काटत खर असि-धार ॥२०॥

भगति बिलच्छन मनि हरइ, चिन्ता, बिपति, गलानि।
दुख, औसाद नसाइ, पुनि, मेलति ईसहुँ आनि ॥२१॥

भगति न छोटी काहु तें, जिहि बल कोरि-चमार।
पूजे हरसित बाँभननि, जानत सबु संसार ॥२२॥

भगति भूलि, सब कछु नसिय, बसिय न सुभ सुख-भौन।
जानि बूझि आफतु परै, अस मूरख जग कौन ॥२३॥

भगति-नदीदे सुर सतत, मिली न मानुस-जोनि।
कातत चरखा में उरझि, बुढ़िया की-सी पोनि ॥२४॥

भगति सुहावनि लखि परत, जिनहिं न तिनि कछु आनि।
रम्भा-मुख निरखे कबहुँ, लखहिं बिबुध कुतियानि ॥२५॥

भगति, भगति, भगतिय सदा, सकल सुखन की खानि।
रखि अबिचल बिस्वास जिय, बढ़हु सुगम जग जानि ॥२६॥

रमारमन, गिरिजारमन, निज-निज लोक लसाहिं।
कै जन-मन प्रतिछिन हरसि, केलि करहिं हुलसाहिं ॥२७॥

सीतारमन बने कबहुँ, रुकमिनि-रमन सुजान।
लोकरमन जन-मन लसत, कस तजिहैं निज बान ॥२८॥

राधारमन लसे कबहुँ, गोपीरमन सुजान।
लोक-रमन जन-मन लसत, कस तजिहैं निज बान ॥२९॥

वृन्दावन वृन्दारमन, सरस कियौ, हित मानि।
कस कीजिय तिन अनुकरन, आपु आपु उपमान ॥३०॥

पातिबरत साध्यौ सदा, साध्यौ नित नव नेहु।
धनि-धनि ब्रजललना सुघर, बरसायौ रस-मेहु ॥३१॥

वे निकुंज निसिदिन हरे, लखत न नैन अघाहिं।
नित मुरली, नित गोपिका, राधा-हरि हुलसाहिं ।।३२।।

छिनु वियोग नहिं भासियत, हरि जन-जन-मन माहिं।
तहाँ सने राधा बने, नयन मूंदि बिलसाहिं ।।३३।।

कछू न गति, मति नित ठगी, सोक न, मोदहिं मोद।
थपथपाति छिनु - छिनु मृदुल, करनि लिये कोउ गोद ।।३४।।

विसय-विकार तहाँ कितै, जितै न व्यापत सोंक।
जितै लखउ सम्पति उतै, मनिनय भासत लोक ।।३५।।

मुरलिनाद नित गुंजरै, नित वसन्त, नित कूक।
बालमीकिहू तहँ पहुँचि, ठाढ़े देखत मूक ।।३६।।

तहाँ सरसुतीऊ खरी, भूलति बागविलास।
जहँ रसबूरे सबहि, कहँ, नरतन कौ अवकास ।।३७।।

हरिहि तहाँ इक होस महँ, राधाहू मुसकायँ।
आनि सबै तहँ चित दिये, चित्र लिखे दिखरायँ ।।३८।।

मधुर लोक, मधुरै मधुर, सब कछु तहँ बिलसात।
मधुर स्वाद तहँ. मधुर छिन, मधुरै दिन कित रात? ।।३९।।

सुरन समूह लसैं कहूँ, ठाड़े कहुँ मुनि-ब्रिन्द।
सहसनयन भरि छवि मधुर, झूमत तहँ नित इन्द ।।४०।।

प्रभु हेरे, सबु धनि समुझि, आपुन आपुन भाग।
मदबूरे तहँ कित विपति, संसय, राग, विराग ।।४१।।

प्रबोध

सरसीरुह-लोचन भजे, 'सरसी' जगती जोय।
नरसी लौं संपति मिलहिं, घर सीधौ पुनि होय ।।१।।

सरसु हरसु पुनि ऊपजै, तरसु न निज मन माहिं।
परसु, परसु नित हरिचरन, दरस कबहुं मिलि जाहिं ।।२।।

कबहुँ उदास न दीखियै, करि हरिचरननु आसु।
फलु तौ मिलिहै बापुरे, अचल राखु बिस्वासु ।।३।।

सुलभ राह तो कहँ दई, नहि संसय जिय आन।
प्रभु कारज हित चित दिये, अरपिय तन-मन-प्रान ।।४।।

कहँ चिन्ता जो हरिचरन, अरप्यौ जीव सरीर।
तो पग जौ काँटो चुभै, होय हिये हरि पीर ।।५।।

बिलखि-बिलखि लखि नहिं परत, ईस अनूपम रूप।
तनिक सान्त मन राखियै, कहा तुच्छ भव-कूप ।।६।।

प्रविसि सतत मन्दिर अभय, प्रभु सुमिरनु करु, बाल।
कबहुँ न संकित होत मन, सरवर तरत मराल ।।७।।

बिबुध बुधहिं नित लखत पुनि, ईस-काज धरि ध्यान।
पुनि चिन्ता किमि कीजियै, हिय हुलास बिनसान ।।८।।

हमहिं तुमहिं का काज जग, करनहार कोउ और।
इक निमित्त करि ईस देहि, सिर कीरति कौ मौर ।।९।।

मो समान कोउ पातकी, रह्यो न तीनहुँ लोक।
तिनि चरननि पारस कर्यौ, अब हरसित जित सोक ॥१०॥

कबहुँ न बानी इमि फुरी, कबहुँ न लेखनि चाल।
पै करुनानिधि की कृपा, छिनु महं कियौ निहाल ॥११॥

गिरहि न सो, गहि हरिचरन, जो उबर्यौ दुख पाहिं।
पढ़ि-लिखिहू पाथर रह्यौ, अजहूँ संसय माहिं ॥१२॥

मरमु न जानहिं जो, तिनहिं, करिय नित्त उपदेस।
पै जो हरिचरननु परे, तिनहिं न ब्यापत क्लेस ॥१३॥

धीर धरे नर तरत नित, संसय-भ्रम-समुदाय।
अवधि पुरेई मिलत इत, जनमु-जनमु कौ पाय ॥१४॥

मिटत न रेखा भाल की, पै मेटहिं जगदीश।
बिधना इकटक लखत जौ, कृपा करहिं जन ईश ॥१५॥

रमारमन जिय राखि नित, लहियरमन सुखमूल।
वे अनुकूल तो जग रहहु, घरी घरी प्रतिकूल ॥१६॥

हमहिं कहा कछु तप कियौ, केवल सुमिरन कीन।
दीनबन्धु पिघरे छिनकु, रोवत देख्यौ दीन ॥१७॥

सतत करिय प्रभु-काज मन, अविचल रखि विस्वास।
जोग-क्षेम नित सौंपिये, प्रभुहिं सफल सब आस ॥१८॥

आतुरता सो कछु न बनि, आवत जग महँ देखु।
जबै घरी जुरि आइहैं, भजि भजि सब अवरेखु ॥१९॥

मही न कछु दुस्प्राप लखु, भगतन कौं छिन माहिं।
पुनि-पुनि कत बिलखत सतत, विपदा सुयं नसाहिं ॥२०॥

नहिं पदवी, नहिं विमल जसु, नहिं सम्पति, नहिं जोय।
नहिं बल-विक्रम जगत महँ, भगतनि दुर्लभ होय ॥२१॥

प्रभुहिं दुखी करिये कहा, विरथ दुःख जिय धारि।
परब्रह्म कहँ उचित कछु, प्रतिदिन अँसुअन हार ॥२२॥

सुनि सुनि रोदन भगत कौ, बिकल निरञ्जन होय।
ऐसो पातक को करहि, जानि-बूझि अघ होय ॥२३॥

हरिहि सदा प्रिय बापुरे, जे सुमिरत तिहिं नाम।
जग-कारज करि आपुनौ, लहत अन्त बिसराम ॥२४॥

बिहँसि विहँसि नित नाचियै, रंगमंच जिय जानि।
पढ्यौ-लिख्यौ जिन भरत मत, तातें अभिनय-हानि ?॥२५॥

हरहि सुरन-मन भाव सों, नाचत पढ़ि अस्तोत्र।
तारहि पितरनि छिनुक महँ, करि पुनीत निज गोत्र ॥२६॥

कहा मुनिन पै ऊ रह्यौ, तोहि न दिढ़ बिस्वास।
जो छिनु छिनु नित होत मन, आकुल बिकल हिरास ॥२७॥

हरि तौ हरन करहिं सदा, विपतिनु हरिहि कहायँ।
हिये राखु निहचै सतत, वे दुख धोय बहायँ ॥२८॥

परम सुखी ते नर जगत, जे चिन्तित न लखाहिं।
हरि चरननि परि परि हरसि, चाखइँ सुरस चखाहिं ॥२९॥

नेह सने सरसुति नयन, लखत जिनहिं हुलसात।
कूटनीति-वारांगना, कबहुँ न तिनहिं लुभात ॥३०॥

कहँ पुनीत मुनि-चरन-रज, कहँ बगलनु की खाक।
जे नित घर-घर मंगता, तिनि घर कबहुँ न ताक ॥३१॥

ज्ञान भानु जिन हिय लसै, ते न तकहिं खद्योत।
घर-घर आग न माँगहीं, जिन घर जागत जोत ॥३२॥

करत-करत निज-निज करम, विबुध सतत हुलसाहिं।
मुकुट जरे हीरा लसत, पाथर तोलन जाहिं ॥३३॥

मन हुलास धरि कीजिये, प्रभु कारज निहचिन्त।
तोहि कहा जब हरि करै, दिवस रैन तब चिन्त ॥३४॥

बिपति न इत उत कीजियै, मन, चंचलता त्यागु।
छीनि सकहि को जगत महँ, तेरौ अपुनौ भागु ॥३५॥

प्रभुहि सुमिरि नहिं कीजिये, सुमिरन पुनि कछु और।
कहा उचित इत उत भ्रमन, गहि पूजन कौ ठौर ॥३६॥

हमहिं तोर सुत, नेह नित, लावत प्रतिदिन खेंचि।
हम कहँ का सुख होइगो तो तन लगे खुरेंचि ॥३७॥

जनमु जनमु हम तुम रहे, प्रिय सुत साथहिं साथ।
कहउ उचित कहुं बैठि के, धरे हाथ पै हाथ ॥३८॥

कबहुं न भूलिय मम वचन, हरि सुधार सब देयँ।
भुगति, मुगति कीरति अछय, बितरहिं, नहिं कछु लेयँ ॥३९॥

मधुर बचन बोलहु सदा, बसी करहु जन चित्त।
कछू न दुर्लभ जगत महँ, कहा बापुरो बित्त ॥४०॥

सुमिरि सुमिर पुनि निज प्रिया, सेवा पुन्न प्रताप।
हरसहु, हुलसहु, मनहिं मन, दूर धरहु संताप ॥४१॥

सरल मतौ यह मानियै, जिय धरि नित बिस्वास।
हम हरि के तो हरि करहिं, आपु सफल सब आस ॥४२॥

बिरचि बिरचि नित दोहरा, बाँचिय सुहृदन माहिं।
पुहपनि गन्ध, समीर महँ, सहज बसत, सकु नाहिं ॥४३॥

सुमिरि-सुमिरि छिनु-छिनु करिय, मलिन मानसहिं सेत।
सुमिरे, जितै वियोग कहु, नित्त अधर रस लेत ॥४४॥

समुझि परै गति नेह की, नाहिं, कबहुँ किहि, लोक।
जो बूरै सो जानिहै, होय ससोक असोक ॥४५॥

मिलहि अवसि सो ताहि जग, जासौं जुर्‌यौ सनेह।
कहा अलभ जगु बापुरे, कंचन बरसैं मेह ॥४६॥

विविध स्वाद पै जगत महँ, विरल नेह को स्वाद।
आनि सबै फीके लगैं, यहि रस के उनमाद ॥४७॥

विरल कोउ जग ऊपजै, नेह-सलोनौ गात।
जो वारै तन-मन-धनहिं, प्रान देत हुलसात ॥४८॥

अवसि विमल तन-मन सदा, परे नेह के जाल।
पै मृदु बन्धन नेह को, कबहुँ, न काल कराल ॥४९॥

कबहुँ न बैठिय, सोक मन, धारि, हरि-चरन माहिं।
सोउ भजै जहं सुमिरि तहँ, कसमसात कोउ नाहिं ॥५०॥

हम तुम्हरे, तुम ईस के, ईस सबहि के होयँ।
सब सब के, इहि भाँति लखु, बाँको होय न दोयँ ॥५१॥

मधुर-मधुर बचननि सदा, मोहिय हरि कौ चित्त।
हरि प्रसन्न तौ हियौ ऊ, जौ हरि मन्दिर नित्त ॥५२॥

बिसम न होय कदापि मन, जतन करिय नित सोच।
जहँ सुर-नर मुनि हँसत तहँ, कबहुँ न बनियै पोच ॥५३॥

कबहुँ न बिधना हू तजे, हरि - पूजन कौ ठाम।
नेह-दीठि लखि राम की, जपत राम ही राम ।।५४।।

सलिल विमल सुन्दर कह्यौ, मन अविचल हरिनाम।
मुख-प्रफुलित नीकौ लगै, भगत सदैव अकाम ।।५५।।

पुनि - पुनि घोसिय बापुरे, मन-मन्दिर हरि-नाम।
जहँ दुइ अच्छर गूँज नित, अति पुनीत सो धाम ।।५६।।

महकि उठत कन-कन छिनकु, इक सौरभ सों गेह।
का न लहिय जग जब भयौ, नेह धाम सों नेह ।।५७।।

विलग छिनुक नहिं जानियै, हम सदैव तोहि पाहिं।
कबहुं न चिन्तित हूजियै, राखिय संसय नाहिं ।।५८।।

कहत, सुनत, सुमिरत तुरत, आवहिं आकुल नेह।
यहै काजु प्रभु कौ हमहिं, कस तजिहैं तव नेह ।।५९।।

मधुर वचन, वानी मधुर, मधुर दरस, मधु नेह।
मधुरहि मधुर जगत लखिय, वितरिय सदा सनेह ।।६०।।

मधुसूदन मधु दान दै, नहिं मधुसूदन फेरि।
मधुर नाम तिनि कौ सतत, जपु मन माला फेरि ।।६१।।

हरि सुमिरे कहुँ सुरनहू, छिनक परत मन चैन।
जहँ सुमिरन जगदीस कौ, जगतउ दूर रहै न ।।६२।।

बड़े वेइ, जिन कृति बड़ी, बड़ौ उदार सुभाय।
कहा बापुरौ ऊँटहू, कबहुँ न बड़ौ कहाय ।।६३।।

महिमा प्रभु की अनगिनत, छिनुक और जग होय।
का सौं का इक निमिष महँ, अचरज करिय न कोय ।।६४।।

महिमा पुनि बरनिय कहा, लखिय उछाह बढ़ाहि।
अबहिं कहा बिरमहु छिनकु, नहिं-रहिहै उर दाहि॥६५॥

मलि मलि रस महँ न्हाइयै, तन-मन मैल छुटाय।
विरल सरोवर नेह कौ, छिनु महँ मोद जुटाय॥६६॥

मदिरा तिनि कों पुनि कहा, जो रस-मदिरा बूर।
झूमैं, पै नित होस मन, जदपि मधुर मद-बूर॥६७॥

वितरहिं मधुर पराग जहँ, सुर-नर-मुनि-अरविन्द।
मन-मधुपहिं तहँ भेजिये, गूंजहि नित सुच्छिन्द॥६८॥

सुर नर-मुनि गन्धरब पुनि, सिद्ध, साध्य जोगीस।
आनि जुरहिं इक आन महँ, जब आवहिं जगदीस॥६९॥

बसनि मोर तो हिय अनुज, परखि देखु, ज्बु चाहु।
अस प्रमान नितनित लखे, संसय रहहु न काहु॥७०॥

विकल कबहुँ नहिं हूजिये, सकल रहिय मन माहिं।
सकल पदारथ कर धरे, जौ मन हरि बिलसाहिं॥७१॥

सबहि लेत रस गीत महँ, जौ गाइय मन बोरि।
राम-राम सी सरस धुनि, और नहीं अति भोरि॥७२॥

विसय न कोउ दुरलभ सुलभ, सब कछु इक छिन माहिं।
कोष भरे कर, कौडियन, चिन्ता सोहति नाहिं॥७३॥

सहज सुभाय सदा बसिय, कसि मन ढीलिय तार।
मधुर-मधुर मन राखि छवि, करियै मधु गुंजार॥७४॥

हियै राखि संकटहरन, दलियै संकट-काँट।
सूर-बाट का काँकरी, सोक-गजहिं दुइ साँट॥७५॥

हरि सुमिरें सब कछु सरल, कछु न कठिन जग माहि।
ज्ञान-भानु बिकसे हिये, संसय-जाल नसाहिं ॥७६॥

यहि मरजादा वेद की, यहै पुरानन सार।
बढ़िय सन्त-मग संक तजि, हिये राघवहिं धार ॥७७

सलिल विमल हिय नित रखे, लखियत हरि मुख-बिम्ब।
सतत मधुर जो सन्त कहँ, सो कुटिलन कहँ निम्ब ॥७८॥

सुधर करनि धरि पाथरहु, छिन पारस ह्वै जाय।
जे कर ईस-चरन-परसपूत तिनैहि सुहाय ॥७९॥

नियम-धरमु सबु एक दिसि, हरि सुमिरन दिसि एक।
ज्ञान-तुला लै तौलियै, संसय जितिय अनेक ॥८०॥

जदपि ध्यान भल, नियम भल, पै मन अथिर सदाय।
ताकौं थिर करियै सुमिरि, 'राम राम' नित गाय ॥८१॥

मधुर-मधुर सुर राखि नित, जपियै प्रभु कौ नाम।
मन पुनीत मदबूर पुनि, छिनकु लहत निज ठाम ॥८२॥

विरल जनहिं कहुँ सुर मिले, मिले तु सुमिरन नाहिं।
सुर-सुमिरन दोऊ मिले, सुर समूह खिंचि आहिं ॥८३॥

सकति कहिय लय, विविध गति, झूमै तनु हरसाय।
विविध तरंगनि तैरि मन, निज कालुस्य नसाय ॥८४॥

गीत-गिरा, सुर-लय, भगति कण्ठ सुहाने राग।
जाहि दिये प्रभु करि कृपा, कस न कहिय बड़भाग ॥८५॥

बिसम छिननिहू सम रहिय, तजि भय, संका, क्रोध।
थिर विवेक हिय राखिये, बनिय न कबहुँ अबोध ॥८६॥

हुलसि-हुलसि नित कीजिये, प्रभु-कारज दै चित्त।
अष्टसिद्धि नवनिधि तहाँ, जहँ हरिसुमिरन नित्त ॥८७॥

रुपया कबहुं न चाबियत, उदर भरत नित अन्न।
सम्पति चेरी ह्वै रहै, जो हरिचरन प्रसन्न ॥८८॥

सम्हरि सम्हरि जे चलहिं मग, तिनहिं न चिन्ता कोय।
निज सँभार हरि कहँ दिये, मरिय न मन बिस बोय ॥८९॥

सुता न काहू की रही, कबहुँ कोउ अनब्याहि।
उतै सफलता कर धरी, जित हरि-सुमिरन चाहि ॥९०॥

कबहुँ न गारौ मन करिय, इक निमित्त सब जीव।
कारज प्रभु कौ, सुइ करै, हम तुम तौ सुगरीव ॥९१॥

बिसय-बिचार न तिनि हिये, रहत छिनकु बिलसाहिं।
जे हरि-कारज हित दिये, चित नित करि हुलसाहिं ॥९२॥

अस उदार को जग कहहु, करत आपुनौ काज।
पै कीरति दै जननु नित, मोहत सुरन समाज ॥९३॥

मधुर विचार मधुर करम, मधुर सुकीरति लोक।
मधुर दिनै दिन ऊजरौ, तन मन मधुर असोक ॥९४॥

लहियतु मलिन भये कहा, दहिय सोक हरि पाहिं।
कहा बापुरौ तम रहत, जोति जरे घर माहिं ॥९५॥

बिसय न नेह कहावही, नेह बानि कछु और।
नाग डसेऊ झूमियत, रस झूमनि निज ठौर ॥९६॥

हमहुँ रुचै सुचि नेह पै, रुचै न मोह-बिकार।
लहहु मोद मन मोदकर, राम-नाम उर धार ॥९७॥

मधुर बैन सुमिरे सदा, उपजत मन इक मोद।
कबहुँ न सोहत कामिनी, धरी रैन दिन गोद ।।९८।।

सदा तुलन सम चाहियै, यहै सफलता-मूल।
राग-रंग हू उचित पै, जाहु न रामहिं भूल ।।९९।।

भुगति बिगारै मुगति जो, कहिय नरक को मूल।
भुगति-मुगति दोऊ सधै, राम भये अनुकूल ।।१००।।

रामा-राम दुऊ सुखद, रामहिं रामा देय।
रमा सरिस रामा रहै, उमरि चरन-जल लेय ।।१०१।।

राम भजे सब कछु मिलै, सबै नसै तिहि भूलि।
कबहुँ न धीरज छोड़ियै, रोइ रोइ, कै फूलि ।।१०२।।

मधुर सुरनि सुख ऊपजै, वे राजहिं तव कण्ठ।
कबहुँ न हाथ पसारहीं, रतन धरे जिन गण्ठ ।।१०३।।

हम तौ निसदिन, छिनहि छिन, सुमिरे तुम्हरे साथ।
दीनबन्धु करुना करी, दियौ हाथ महँ हाथ ।।१०४।।

कहा लहिय परि मोह लखु, हिय राखहु नित राम।
कामधेनु जिनि घर लसत, तिनु मन चहिय अकाम ।।१०५।।

उतरहु समर बिसाद तजि, करि विक्रमु, जसु पाउ।
हिये राम धरि नित जपहु, छिन-छिन जग हुलसाउ ।।१०६।।

सुमति तऊ जिय ऊपजै, जौ हरि-सुमिरन नित्त।
कहा बापुरौ मन तजहि, उतहु न कामिनि वित्त ।।१०७।।

मुरझायौ मन नित लहै, जहँ आनन्द उछाह।
उत प्रमाद करियै कबहुँ, नाहिं, सारियै दाह ।।१०८।।

मधुर मधुर धुनि कीजिये, जौ न होय स्रम नेक।
अति प्रसन्न मन गाइये, चिन्ता नसहिं अनेक ॥१०९॥

सुमिरि सुमिरि मन राखिये, हरि-मोहिनि-छवि-रूप।
दरसन-रस महँ बूरियै, करिय सरूप निरूप ॥११०॥

मान बड़ौ तिनि कौ जगत, जे हरि-सम्मुख दीन।
दीनबन्धु निसदिन लखत, तिन हित करुनालीन ॥१११॥

तनिक न संसय कीजियै, पीजिय रस हुलसाय।
मधुर भाय सों लीजियै, दीजिय मधु उमँगाय ॥११२॥

तिनहिं न चिन्ता बापुरी, व्यापहि ठाढ़ी दूर।
टुकुर-टुकुर बौरो लखै, जे हरिपद मदबूर ॥११३॥

सरल मतौ यहि मानियै, रामनाम सर्वस्व।
जमिय उमँगि मन महँ सतत, लहिय विरल वर्चस्व ॥११४॥

मेधा, बुद्धि, प्रताप बल, कीरति, नौनिधि-धाम।
छिनु छिनु बढ़ै, घटै न कछु, पल-पल सुमिरे राम ॥११५॥

कहा कहिय हरिनाम की, महिमा सतत अनन्त।
सेस सारदाहू थके, कहत न बनत दुरन्त ॥११६॥

तनिक धरिय सन्तोस मन, तजिय न धीरज, धीर।
कबहुँ, कहूँ, किनिहू सुन्यौ, चूकत हरि कौ तीर ॥११७॥

सीता हरी, तऊ न हरि, तजी बिमल मरजाद।
रावन हत्यौ तऊ, जबै बिसर्यौ हर की याद ॥११८॥

हरि हर द्वै, नहि जानियै, धारि अनोखे रूप।
रामै बिहरत भगत मन, रंक होउ कै भूप ॥११९॥

सामान्य

कौन कहत संगीत महँ, नाहिंन रह्यौ प्रभाउ।
स्रोता सुनि भाजत तुरत, रुकत न कोटि उपाउ ।।१।।

अवसि कबहुँ संगीत कछु, करि डार्‌यौ बड़ पाप।
कहियत जग अजु आदरसु, निपट अँगूठा छाप ।।२।।

बुद्धि अँगूठा नित जिन्हिं, दूर खरी दिखराय।
गनिकागुरु ते तजत कहुँ, अपुनौ सहज सुभाय ।।३।।

कवि न चितेरे मूढ़मति, कबहुँ कहूँ दिखरायँ।
अच्छर-सत्रु अनेक इत, जित-तित नित मिल जायँ ।।४।।

कबहुँ न पण्डित कौ अरथ, मूरख-कोषन माँहि।
पै निज अँगूठा-छाप नित, समुझहिं कूढ़, हँसाहिं ।।५।।

शास्त्र चर्चा

सारद सुमिरत पै कबहुँ, लखत न सारन सार।
जे कछु जानत तिनि करी, 'अचल' सार निस्सार ।।१।।

भरत, मतंग कहा करहिं, अभिनवहू निरुपाय।
सारँगदेवहु बिबस, जित जुर्यौ, मूढ़-समुदाय ॥७॥

संगीत शिक्षण अभ्यास

सपनेहुँ कबहुँ न जिनि सुनी, मिमना की मिमियान।
ते सीखन संगीत नित, आवत सीना तान ॥१॥

सिच्छक साबुन घिसत नित, गधा घोर ह्वै जायँ।
पै धोये पोंछे सतत, स्वच्छ गधा दिखरायँ ॥२॥

सुनियत पिकन समूह महँ, गयौ एक प्रस्ताउ।
'कू-कू' करि तैयार अब, कहूँ सभा महँ गाउ ॥३॥

महासिन्धु संगीत कहँ, कहँ सिच्छन दिन चार।
चींटा कछु तिनका चढ़े, उतरन चाहत पार ॥४॥

चार दिना कै छोकरा, कछु पैसन पै गायँ।
तीसमार खाँ बनि चले, बात करत इतरायँ ॥५॥

घिसि घिसि लेखनि तृन करी, सोखे मसी समुद्र।
नाहिन समुझहिं खुद लिख्यौ, बूझत, छिन महँ रुद्र ॥५॥

संगीतालोचन

(क) विविध

गिरा-अरथ, रस-भाव अरु, राग-ताल सुख-मूरि।
घुरहिं एक महँ 'गीत' सोइ, आनि सबै कछु धूरि ॥१॥

सुनु रियाज कछु और, अरु, और सभा की बानि।
डाँड़ न बैठक इत करिय, यहि दंगल जिय जानि ॥२॥

कण्ठ मथानी राग दधि, मथियै करिय रियाज।
रस माखन गहि, छाछ तजि, मोहिय रसिक समाज ॥३॥

रचि रचि सुर महँ गाइयै, वितरिय अनँद असीम।
बूरिय सुनि, अरु बोरियै, घर घोटिय तालीम ॥४॥

सुर लगाय सुनियै सदा, रस लीजिय मन माहिं।
रसिकन-उर हिय घोरियै, सकल लोक खिंचि आहिं ॥५॥

अभिव्यक्ति कछु और नहिं, और न कछु अनुभूति।
विरस 'दिखावनि' बिलगु पै, मनहुँ नगारनि तूति ॥६॥

रतिरंग बिलग न राग रँग, समुझि-बूझि हिय जानि।
दौरि-भाजि कहुँ उचित कहु, रँग-रस की बतियानि ॥७॥

मल्ल युद्ध नहिं राग रँग, कुस्ती नहिं रति-रंग।
कबहुँ न रागिनि कामिनिहिं, उछरि दबोचिय अंग ॥८॥

सदा गरम नहिं हूजियै, कबहुँ नरम, यहि सार।
सोहत कछू न जगत महँ, इक छिन महँ तैयार ॥९॥

कछुक छननि द्रुतलय भली, सुउ जुन तोरत अंग।
अन्तहिं ते आरँभ किये, बिनसै सब रस-रंग॥१०॥

अकर छोरि, चरननु पकरि, खोजि गुनिन सिरमौर।
गीत-गिरा रस जानियै, नतरु कहूँ नहिं ठौर॥११॥

'देवहिं' गुरुवर मानि कै, तजि निज गरब-गरूर।
'सदारंग' चरननि परे, रचे ख्याल रसबूर॥१२॥

कोउ 'सरंगी' घिसि करै, 'तबला' कोउ बजाय।
पै सितार कौ बाजु तो, अँगुरिनि कबहुँ लखाय॥१३॥

छिनकु रूई सी धुनकि उन, डारी तार पराहिं।
तन्त्री-नाद-तरंग कित?, यहि कोलाहल माहि॥१४॥

नीर-छीर लौ चाहियतु, गायक-वादक-चित्त।
मंच अखारौ बनतु पै, कोउ पट्ट, कोउ चित्त॥१५॥

धातु न प्रत्यय जानहीं, मनहूँ प्रत्यय नाहिं।
स्रद्धाहीन हियौ लिए, सरसुति-उपबन जाहिं॥१६॥

इक व्युत्पत्ति-निमित्त इक, लखियत, प्रवृतिनिमित्त।
जे न दुउन जानन चहहिं, तिनि कौ संकित चित॥१७॥

परिभाखा-हिय इक भर्‌यौ, रहत अरथ गंभीर।
जानत चन्दन-भार खर, लहत न सुरभि-समीर॥१८॥

पंचमु कहँ पँचयौ सदा, हरिक मूर्च्छना माहिं।
पै "पंचमु" कहियतु सतत, यहि रहस्य किहि पाहिं॥१९॥

गायक

कानिनि खींचत नामु लै, छिन-छिन चलत कुचाल।
कारो आखर भैंस जिमि, 'गुनियनि' गावत ख्याल ॥१॥

भलिय जु खुसरो ना भये, सचमुचि खींचत कान।
'हाय-हाय' सुनि ख्याल महँ, देत चपत द्वै तान ॥२॥

'ध्यान' वहै, ख्यालहुँ वहै, उतै 'देव' उत 'पीर'।
बूरहु सुर महँ बापुरे, रोकहु तनिक सरीर ॥३॥

कितै 'सदारँग' 'सरसरँग', कितै मियाँ बदरंग।
पै छाँटत खाँ-साहबी, करत रंग महँ भंग ॥४॥

मानुस-जनम भयेहु तिनि, जनमु-जनमु की याद।
रेंकत पुनि, डकरात पुनि, तजत गीत-मरजाद ॥५॥

देइहिं रसिकनु दोसु नित, बढ़ि-बढ़ि मारहिं तान।
आदमजाद लखात पै, नाहिं अरथ कौ भान ॥६॥

बानी-अरथ बिदा भये, तऊ अरथ की चाह।
चित अपुनी, पट आपुनी, सुब्बाहन अल्लाह ॥७॥

चिढ़त सदा प्राचीन तें, रुचत न इनहिं नवीन।
धुरपद तजे, खयालहू, ऐंठि मरोरे बीन ॥८॥

सदारंग की तान तजि, आपु रचे कछु जाल।
नयननि झोंकत धूर नित, कहत 'गाइयतु ख्याल' ॥९॥

ख्याल एक 'सरगम' अलग, एक घराना माहिं।
गुरु-चेला हू बैठि मिलि, एकत गावत नाहिं ॥१०॥

'सुधि न लीन जबतें गये', भयौ अन्तरा नित्त।
ठूंसत हरिक खयाल महँ, बिनु आँटी ह्वै चित्त ॥११॥

जहँ भूलत तहँ लेत नित, मुए बुजुरगन-नाँव।
भये घराना अनगिनत, मूढ़ छुअत झुकि पाँव ॥१२॥

कढ़ी रहत चाटत सतत,ताननि चहत मिठास।
मति मतवारन की अवसि, चरन गई कहुँ घास ॥१३॥

मुख न दाँत, इक आँतहू, रही न जिन के पेटि।
'चौंकि परी' गावत मियाँ, तान घसीटत लेटि ॥१४॥

भाय बताय सभानि कलु, जीते रसिकनि-नैन।
'मंगलमुखि' 'देवी' बनत, ठुमरिहिं परत न चैन ॥१५॥

ध्रुरपदिया आड़े भये, तिरछे भये मृदंगि।
रसिकवृन्द ध्रुरपद तजहु, लखहु तनिक मुखभंगि ॥१६॥

हाड़-हाड़ ढीलौ भयौ, कहँ सुर? जहँ भूकम्प।
बिरमहु छिन, पुनि गाइयौ, मन्द परे मुख हम्प ॥१७॥

उचै हाथ, भौं डारि बल, माथे त्रिवली तानि।
समु पै आवत 'खाँ' हटहु, धनि यहछवि यहि बानि ॥१८॥

भई प्रलय-लय, सुधि न कछु, बिकल ताल, सुर राग।
मूंड पखावजु पै लग्यौ, धनि ध्रुरपद के भाग ॥१९॥

जौ मरदानिय गायकी, ध्रुरपद महँ नित होति।
'मृगनयनी' गावत कहा, रही, करहु सुर-जोति ॥२०॥

'रूपमती' इक मदभरी, दूजी 'राय प्रवीनि'।
अकबर के जुग जागती, जोति रहीं रसभीनि ।।२१।।

अजहुँ बोल सृंगारमय, लसत धुरपदन माहिं।
पुरुस कहा रस रंग महँ, पाथर फोरन जाहिं ।।२२।।

कर ढप धरि 'दफजन' चतुर, अकबर के दरबार।
धुरपद, नित गावति रही, वहति रही रस धार ।।२३।।

रस सागर धुरपद कबहुँ, नचियत रहे सुभाय।
उछर-कूद यहि बापुरे, कहुँ संगीत कहाय ।।२४।।

कबहुंक बधिकनु बस किये, हरिनवृन्द सुकुमार।
अब मृगनैनिऊ ना रुचै, जबु चीखत मुँह फार ।।२५।।

भली सु लोरी चैन की, रोवत देत सुवाय।
कहा करिय अस राग कौ, कुम्भकरन जगि जाय ।।२६।।

'बोल' कबहिं रुखसत भये, किरत निगोरी 'तान'।
'बोलतान' पै कहत वे, देखहु सकल जहान ।।२७।।

बेचारौ गायक धुनत, निज सिर बारम्बार।
भड़भड़सिंह पखावजी, लौटत चक्करदार ।।२८।।

कसमसाहिं स्रोता रसिक, छिनु छिनु भयौ पहार।
पै खाँसाहव आपुनी, साधि रहे गन्धार ।।२९।।

घोड़े मुख कर गुरु जबर, हिनहिनात लेहिं तान।
पीसि पीसि पोथी करी, बिजुरी-चाकि-पिसान ।।३०।।

भोर भई, कुदरत करै, दैनिक अपुनौ काज।
अबहुँ न गायौ अन्तरा, छिमा करहु गुनिराज ।।३१।।

सहस सहस स्रोता थके, पै न थके गुनिराज।
धचकन थकत सवारि, पै, थकत न कबहुँ जहाज ।।३२।।

वादक

रिमझिम-रिमझिम मेह जिमि, स्रौननि परति फुहारि।
तबला-धुनि सो कित गई, दैवहिं दई बुहारि ॥१॥

बलिहारी बुलबुल भये, उमँगे सुनत कपोत।
तबला-बाज बिदा भयौ, कबहुँ न दरसन होत ॥२॥

कबहुँक छतु सी कूटियतु, फूटत कबहुँ पहार।
तबला की तबली करी, भई खुदा की मार ॥३॥

'घन-गरजन' जहँ वीर-रस, 'रिमझिम' जहँ सृंगार।
'भड़भड़सिंह' पखावजी, भूलि गये यह सार ॥४॥

टूट्यौ तार सरोद कौ, लुढक्यौ बायौं जाय।
इत सरोद, तबला उतै, चकवा-चकवी भाय ॥५॥

उचकि उचकि बुढ़रा रहे, लड़्यौ मूँड़ ते मूँड़।
छिनकु न अविचल गोद महँ, हाथी की-सी सूँड़ ॥६॥

ज्यों ज्यों भगतनु तें सतत, पावत जावहिं दाद।
त्यों त्यों खुजरी अति बढ़ै, मेटहिं तजि मरजाद ॥७॥

कबहुँ सुरीले जे रहे, महा असुर दरसाहिं।
धन्नि बुढ़ापो, डोकरनि, लखि बानर हरसाहिं ॥८॥

लरिकाऊ समरथ भये, पै न तज्यौ इन लोभु।
हाँफि हाँफि मंचन वृथा, उपजावत विच्छोभु ॥९॥

बँटि मृदंग तबला भयौ, छोटी तनिक मुहारि।
गुमकि गुमकि मन-गुदगुदी, बायौं करत पुकारि ॥१०॥

भड़भड़ात कोऊ कबहुँ, गड़बड़ात लय माहिं।
फड़फड़ात बायौं बिलखि, तड़फड़ात कल नाहिं ॥११॥

जसु-तसु सम पै 'धा' दिये, देखहिं दीदा फारि।
कहइ कोउ तौ 'वाहवा', डारे होस बिगारि ॥१२॥

पावस महँ कीरा मनहुँ, बढ़े तबलची आजु।
बोल-बाँट बाकायदा, नाहिं बेसुरौ साज ॥१३॥

तबला अपुनौ, हाथहूं, आपुन, वे निस्संक।
पीटैं नित बेक़ायदा, करि करि भृकुटिनु बंक ॥१४॥

नर्तक

'राधा' भूलहिं बापुरी, उरझहिं 'ताधा' माहिं।
'बाधा' बनि रस-रंग महँ, 'अनुराधा' कहलाहिं ॥१॥

कबहुँ कबहुँ राधाहु की, चरचा करि गुनवन्त।
धाइँ धाइ 'धा''धा' करहिं, जिनि कौ कबहुँ न अंत ॥२॥

अवसि नाच ऐसो कर्‌यो, राधा मोहन संग।
ब्रज तजि भजे, न पुनि फिरे, लिपटे कुबजा-अंग ॥३॥

'कथक' कथा कौ भाव जो, निज अंगनि दरसाय।
पै गीता के कान्ह कहँ, कबहुँ न परत लखाय ॥४॥

'छेर','मटुकिया','काँकरी','चोली','भीजी' 'सारि'।
'कसक-मसक',पुनिपुनि नचत,कबहुँ न भज गिरिधारि ॥५॥

कितै चक्र! चक्कर परे, घोटत चक्करदार।
अजु ढपोरसंखनि तज्यौ, संख-पदुम कौ सार ॥६॥

भूलि गदाधर की गदा, भगतबछिल की बान।
पारथ-सारथि-रूपहू, 'वाजिदली' महँ प्रान ॥७॥

बालरूप बिसर्‌यो मधुर, नाहिं जसोदा याद।
कहा कहिय लखि काल-गति, तऊ बनत उस्ताद ॥८॥

कहँ गनिका की निलजता, कहँ राधा की लाज।
कितै दाद की खाज अरु, कितै नेह, रस-राज ॥९॥

गनिका-गुरु जानहिं कहा, ब्रज बनिता-रस-रूप।
सतत धकेलहिं कूप जे, सखियनु कथा अनूप॥१०॥

रहनि-सहनि, बानी, नयन, करनी, सुहृद-समाज।
जग-जाहिर, बरनिय कहा, पै कहियत महाराज॥११॥

सिमिट्यौ फरस, गयौ हरस, अजबु भयौ हड़कम्प।
घुंघरू बिखरे, उत हटहु, नाचत वे 'गजझम्प'॥१२॥

सरस कथा भूले कथक, अथक कियौ स्रम अंग।
संकर के से गन मनहुँ, जारन चहत अनंग॥१३॥

थके तु कत्थक ही कहा, पै स्रोता थकि जायँ।
म्हौं बाये सिगरे सुनत, छिनु का-का बकि जायँ॥१४॥

विविध

बिनु कारन कछु जीव जग, समय नसावन आहिं।
सतत कँटीले चिरचिटा, भाजेउ चिपटत जाहिं ॥१॥

बहुत भई, कीजिय मया, चलनि दिखाइय मन्द।
दार-भाति सोहत कबहुँ, नाहिन मूसरचन्द ॥२॥

मातु, बहिनि, दुहिता उठहु, अबहुँ निज निज गृह जाहु।
भाभी-भाभी बसहु इत, लहिहौ परम उछाहु ॥३॥

च्यौनप्रास उत डारिहौ, सेइ रसीले छन्द।
सिलाजीत कहुँ बोरि कै, पुनि बनिहौ सुच्छन्द ॥४॥

गईं झुरी, तन फुरफुरी, डुकर-डुकरियनि जोर।
कायाकलप भयो मनहुँ, सुनत छन्द रस-बोर ॥५॥

जौ रस की बतियाँ सुनत, रसिकनु माहिं लजाउ।
लरिका भये परोस म्हँ, नाचि गाइ सुख पाउ ॥६॥

'छी-छी' करहिं बनाय मुख, पै टारेहु टरै न।
लार-भरे मुख डोकरा, सुनत जात रस-बैन ॥७॥

'हाँ-हाँ' बुढ़ियन-सिर करत, 'ना-ना' डुकरन-मूर।
मानिनि को नखरा गयौ, तौ बे चकनाचूर ॥८॥

मकरद्धुज चाटत सदा, मकरद्धुज के काज।
पै रस की बतियाँ सुनत, बूढ़नि आवति लाज ॥९॥

खरल-घुटो रसराज कहँ, कहँ मानस-रसराज।
चाटहिं का का बापुरे, भजैं न, रसिक-समाज ॥१०॥

नारी लखि रस दियतु उत, इत नारी रस-चेरि।
कितै बैद कविगन; कितै, कितै रोग, कित छेरि ॥११॥

वात-पित्त-कफ रैन-दिन, बरनत रुगुन-समाज।
तेहि रस-बूरे भिसगवर, कहियतु जग कविराज ॥१२॥

नई-नई सारी पहिरि, भामिनि दई उतारि।
सुनियै किमि सृंगार धरि, बैठि रही मन मारि ॥१३॥

रसिक रजक पुनि-पुनि हँसत, खिलत, न मनहिं सँभार।
रस-मूरति कोउ कवि अवसि, बरन्यौ कहुँ सृंगार ॥१४॥

खर न टरत इत-उत छिनकु, मारेहु पुचकारेहु।
नेता मरे चुनाव महँ, कहुँ बैठत हारेहु ॥१५॥

एक रूस के दास पुनि, एक 'रूस' के दास।
वे कविनायक रस-भरे, वे खलनायक खास ॥१६॥

चीनी-चाय भली कछुक, भली न 'चीनी'-चाह।
सूधी राह सुदेस की, भली न टेढ़ी राह ॥१७॥

भामिनु-सारिनु-संग नित, उपजावत मन मोद।
रंग-बिरंगी छबि निरखि, कहौं भरै नित गोद ॥१८॥

आसन सुखद सम्हारियै, अँखियन हुइ द्वै चार।
सरसुति कौ नित लाड़लौ, बरनत रस सृंगार ॥१९॥

एक लसत सुर-सन्दरिनि, इक चित्रनि दूकानि।
कोऊ रसिक सृंगार प्रिय, कोउ कहँ छाया प्रान ॥२०॥

सतत विरह-संजोग छिनु, आवत जीवन माहिं।
मनु इनके पुरुखन किये, 'नव-प्रयोग' कित जाहिं ।।२१।।

करत कोउ, मादीन कवि, अपुन रसोई माहिं।
'नव-प्रयोग' कुलतार सों, रचि-रचि खिचरी खाहिं ।।२२।।

सूखी लकरिन नीर नित, ढारति सुघर सलौनि।
फूंकि हजारन चहति पुनि, 'नव-प्रयोग' कवि-भौनि ।।२३।।

कबहुँ हजामत नहिं बनै, बिथुरे रूखे केस।
छींटा नहीं सनेह को, धनि कवि, धनि दरवेस ।।२४।।

रीतिकाल के कवि सदा, इतर बसावत मोंछ।
यहै सोचि मनु छोकरा, देत छुरा सों पोंछ ।।२५।।

कवि-पुंगव दरसन किये, उमँगत कामिनि-गात।
कतहुँ न तिय मानस-उमँग, लखि मिमना मिमियात ।।२६।।

मो सुन्दरि नयना कमल, तव तिय कौड़ी-नैन।
हमहिं रुचै उपमान वहि, तव मन कमलु हरै न ।।२७।।

नित्त पजामा टँगड़ियनु, कोट जथाजथ नित्त।
तनु तौ नवल प्रयोग नहिं, भ्रमित बापुरो चित्त ।।२८।।

कवि-सम्मेलन हित कबहुं, फिरियै गली गली न।
सबैं बैद घर मिलहिं नित, मन मलीन तन छीन ।।२९।।

चींटिनु चाटे नित्त धरि, द्वैक बतासा भोग।
'छपन भोग बिजनु छतिस', आरति गावत लोग ।।३०।।

निज उदरनि में जे भरत, ठूंसि ठूंसि पकवानु।
दुइ पेरा धरि भोग महँ, ठगन चहहिं भगवानु ।।३१।।

'हरि तौ भूखे भाय के', पै भायहु तौ होय।
लरिकनु गुल्ला रसभरे, प्रभु कौ पेरा दोय।।३२।।

ताम्बूल बढ़िया चबत, जे तमोरि-दूकान।
पूजन-हित लावत सदा, सड़े सुपारी-पान।।३३।।

जस पूजा तस फलहुं लखु, काहे झींकत यार।
देवनहू ते दाँव ! किमि, प्रविसिय सुर-पुर-द्वार।। ३४।।

कण्ठ मसोसि जहान कौ, ऐंठे, सेठ, करोर।
लाखनु ते मन्दिर बनत, मच्यौ बिस्व महँ सोर।।३५।।

उत चतुराई ना चलै, साथ न देत मुनीम।
साँच बही जमराज की, सफल न जालु असीम।।३६।।

प्रकीर्ण

मुक्तक

कवहुँ न पाथर पोघरे, साँच भये सपने न।
धिक-धिक मो वानी-गरव, गैर भये अपने न ॥१॥

भौंर भ्रमत विकसित कमल, छुअत पाँखुरिनि चैन।
चित्र लिखे कमलनि कबहुँ, सपनेहुँ भ्रमर भ्रमैं न ॥२॥

तन उजरो, मन ऊजरो, उजरे नित दिन-रैन।
कहु संजोग, वियोग कहु, सरिस दुऊ, नहिं चैन ॥३॥

कबहुँ कबहुँ रिस सों बढ़ै, रस रसिकन हिय माहिं।
तीतौ हू कछु चाहियत, नतरु जीह-रस नाहिं ॥४॥

अन्त न जीवन को यहै, कलुस-भरो संसार।
एक लोक ऐसो सजनि, जहँ नित केलि-बिहार ॥५॥

कबि-गन-बरनित सुन्दरिनि, सोभा अजहुँ नवीन।
कहँ सरीर कहँ भंगिमा, कहँ पिय कला-प्रवीन ॥६॥

हाड़-माँस जड़ जगत नित, चेतन चितवन, चाय।
कित जड़ कहँ सखि अमरता, कहँ चेतनु भय-भाय ॥७॥

साहजहाँ कित मोहिनी, आजु कितै मुमताज।
सतत हरत रसिकन हियौ, अजहुँ सलोनो ताज ॥८॥

रिसि-मुनि आचारज सबहि, ब्यौंति धरे छिनु माहिं।
करी वकालत झूठ की, जाली बाद जिताहिं ॥९॥

वे वकील धनि जगत महँ, करहिं झूठ को साँच।
पै दिन केते अस चलत, कहुं न साँच को आँच ॥१०॥

अन्धनु कौं काजर कहा, कहा बधिर कौं राग।
लूलन बैसाखी कहा, हिजरनु बाँकी पाग ।।११।।

अन्धनु के अन्धा भये, स्रम करि करि परमान्ध।
सुरमा दियो सुबैद को, आँजत नाहिं मदान्ध ।।१२।।

कहँ असंख्य मृगलोचनी, कहँ कबिगन सुकुमार।
पै सरसुति वर अमिय छकि, छन्द भये अवतार ।।१३।।

कामजयी-चरननु परे, जितियत कामिनि-जूथ।
ऐरावत पग-चिन्ह नित, ढूँढत करिनि-बरूथ ।।१४।।

ज्ञान, कला, बानी, रहनि, लेखनि, सुजस, सुगीति।
छवि-चरनन लोटत सतत, उर उपजे कहुँ प्रीति ।।१५।।

नेह-कला ढँग सीखिये, रसिक-सिरोमनि पाहिं।
हीरक-गाहक जतन करि, जौहरि ढूँढन जाहिं ।।१६।।

नेह-परस कछु और है, औरै कूकुर-काज।
मात-पिता जग अनगिनत, विरल रसिक-सिरताज ।।१७।।

परस-परस अन्तर महा, पारस-परस विचित्र।
नेह-परस-रस आनियतु, दुइ हिय भये सुमित्र ।।१८।।

गुन-जित-मृगलोचनि-बदन, सुरभित बच्छ बिसाल।
बिरल पुरुस-पुंगव धरनि, उरझत अलकन जाल ।।१९।।

परम्परा के पूत कित, कित रूढिन के दास।
जननि-अंक राजहिं सुअन, सेवक छीलहिं घास ।।२०।।

परम्परा सेइय सदा, रूढि न दीजिय कान।
जननि-पयोधर पीजिये, तजिय चेरि-पय पान ।।२१।।

वालमीकि अरु व्यास को, चेरौ कालीदास।
कविकुलगुरु कहियतु सतत, बितरत हरस-उलास ।।२२।

नव न कल्पना-कमलिनी, नवल बीचि-कल्लोलि।
ढावहिं पुलिननु मूढजन, देहिं पंक जल घोलि ।।२३।।

गरब सहित घोसित सतत, नाम, जनक,कुल, गोत।
तेज-पुंज-पीडित भजैं, गनिकासुत-खद्योत ।।२४।।

(विविध वाद)

रहसि लसत सो जग रहसि, और न कछुक रहस्य।
तेहि रस चाखत रसिक नित, आन सबै उपहस्य ।।२५।।

नागरिकनु के आदरस, जीवन-कला-प्रवीन।
तन-मन करत सुगन्धमय, ते कविवर प्राचीन ।।२६।।

इनि कुण्ठा कुण्ठित करत, रहत सुकण्ठिनि दूरि।
अवगुण्ठन कौ रस चखै, राज-पाट सब धूरि ।।२७।।

सिंहासन सूने कबहुँ, रहे न धरनी पाहिं।
महाकविनु कौं जनमु पै, लखियतु सदियनु माहिं ।।२८।।

सबै जथारथ कबिन कौं, सुख-दुख, राग-बिराग।
बन, उपबन, समसान, घर, वाम-दैव बड़भाग ।।२९।।

रावन, राघव अरु सिया, सूपनखा बिलसाहिं।
तुलसी-हिय लखु बापुरे, कवि कहुँ ढूंढन जाहिं ।।३०।।

जो साँची तव बिरलमति, भरि-भरि नैनन नीर।
राम-बन गमन कत सुनैं, सही न जिन सुत-पीर ।।३१।।

मेघहिं लखि हुलसहिं सदा, नाचहिं बोलहिं मोर।
दादुर कण्ठ तबौं करत, टर्र टर्र कौ सोर ।।३२।।

गोपाल

पद-प्रबन्ध-रचना-चतुर, बिद्या - बुद्धि - बिसाल।
गान-कला-गन्धर्ब धनि, धनि नायक गोपाल॥१॥

निपट अँधेरौ भेदि जे उमँगे जगमग दीप।
तिनि की कीरति अजहुँ जग, सप्तखण्ड नवद्वीप॥२॥

कल्लिनाथ जिनि कौ कियौ स्रद्धा सहित बखान।
ते कबहूं निसिदिन बने, रसिकनु जीवन-प्रान॥३॥

ग्रन्थ कियौ तिनि कुछ अवसि, वेंकटमखी प्रमान।
कुटिल काल गति पै नस्यौ, को करि सकै बखान॥४॥

सुनियत खुसरो सौं भयौ, इनि कौ गान-विवाद।
दन्तकथा इक देखियत, बरिस तीन सौ बाद॥५॥

लिखी 'रागदरपन' तहूँ, बरन्यौ परम प्रताप।
खुसरो को छलहू उतै, लिख्यौ, यहै निस्पाप॥६॥

जे बैजू के सिस्य ते, और भये गोपाल।
ते राजे गुजरात महँ, इतिहासनि तिनि हाल॥७॥

अकबर के जुग्ग ते रहे, तानसेन सों वाद।
सुनियत, पै न प्रभाव कहुँ, मिलत . वध प्रवाद॥८॥

बैजू-मानसिंह

सूर रहे जब दुधमुँहे, बाल रहे हरिदास।
बैजू बैननि रसभरे, बितरत, रहे हुलास ॥१॥

ब्रज-भाषा के आदि-कवि, बैजू कहियत नित्त।
जानहिं जिनि धुरपदनि कौ, पाठ कियौ दै चित्त ॥२॥

मानसिंह-सो भूप लखि, बिबिध गुनी दरबार।
आनि जुरे चहुँ दिसनि तें, गयौ चित्त को भार ॥३॥

बोले पुनि तहँ मन्दिरनि, संख घंट घरियाल।
देवस्तुति हुलसत करी, गुनिजन भये निहाल ॥४॥

तुरकी, अरबी फ़ारसी, यवननि के दरबार।
करति राज सो नित रही, ब्रजभाषा सुकुमार ॥५॥

कबहुँ न गौरव-पद लह्यौ, तहँ, नित करति गुहार।
मानसिंह-बैजू दुउनि, आनि सजी दरबार ॥६॥

ब्रजभाषा महँ पद करे, जन-मन-मोहन-बैजु।
परम्परा उपजी नई, जानै सोइ पढ़ै जु ॥७॥

इक धारा तो पदन की, धारि बिसुनपद नाँव।
बिसुनपदी सी है बही, बन उपबन-पुर-गाँव ॥८॥

सन्त भगत कवि सूर से, बूरि-बूरि अनहाय।
तिहि धारा महँ सुच्छ-मति, गये सबहि अन्हवाय ॥९॥

कोटि कोटि कण्ठनि बही, पूत भये पुर गाँव।
कलि-मल तुरत पखारि पुनि, बिस्तारति हरि-नाँव ॥१०॥

धुरपद-धारा नित भई, राजसभा-हुलसानि।
छन्द गौन बनि धुरपदन, राग भयौ परधान॥११॥

मानसिंह वैकुण्ठ कौं, गये पूरि निज काजु।
अमर भई कीरति बिमल, हुलसे अमर-समाजु॥१२॥

बैजू अरु चेरा गये, कीरत के दरबार।
नगर कलिञ्जर धनि भयौ, धुरपद की गुञ्जार॥१३॥

पुनि पहुँचे गुजरात महँ, जितै बहादुरसाह।
गुनि-गाहक, गुन-पारखी, रस-बूरौ नरनाह॥१४॥

ऋद्ध हुमायूँ बस कियौ, बैजू एकहि तान।
मुगलनि के दरबार महँ, बढ़यौ धुरपदन मान॥१५॥

धुरपदियन-रचना फली, फूली करत बहार।
ब्रजभाषा कवियनि भयौ, पकौ खेत तैयार॥१६॥

बिस्नुपदनि जनता रमी, भगति-भाय हिय धार।
सरस धुरपदनि छिनु किये, रस-समुद्र दरबार॥१७॥

रसनिधि भगतनु, गायकनु, सामन्तनु सिर धारि।
देस-काव्य-भाषा करी, रस-गुन-मय-निरधारि॥१८॥

उमँगो ललित परम्परा, मोहे यवननु चित्त।
धनि बैजू, धनि मान जू, दोऊ जीवहिं नित्त॥१९॥

तानसेन

तानसेन ऐसो रह्यौ, वहि जुग महँ गुनवन्त।
मूर्च्छन-तत्त्व-प्रवीन अरु, मेल-तत्त्व मति-मन्त ॥१॥

मरमु जु अन्तर-काकली, सुभ प्रयोग महँ नित्त।
समुझि-बूझि धरि रागिनिनि, मोह्यौ जग कौ चित्त ॥२॥

'मियाँ'-रागिनिनि महँ यहै, मोहक तत्त्व लखात।
धनि सो गुनि,धनि तिस गुरु,धनि अस रतननि-मात ॥३॥

यवन गुनिहु बिलसत रहे, अकबर के दरबार।
तानसेन को नाम पै, अमर कियौ त्रिपुरारि ॥४॥

उगति-जुगति पूरौ भर्यौं, रस-घट अपरंपार।
कबहुँ न जासों सरसुती, रूठी गान-अधार ॥५॥

जौनपूर सेखनि फँसे, एक मुबारक सेख।
कपट कर्यौ जिनि पंच बनि, मिटी न कीरति-रेख ॥६॥

सरस कण्ठ,मति विमल अरु, सुरदायिनि की भक्ति।
सदा भई 'रसरूप' महँ, लहि जग को अनुरक्ति ॥७॥

सदा सरसुती दाहिनी, रही समाजनि माहिं।
कूटनीति-दलदल तरो, कियौ नैंकु भय नाहिं ॥८॥

ग्रन्थ 'रागसागर' कर्यो, मथि-मथि सास्त्रनि सार।
जितै हुसैनीऊ भई, छिनु 'उसाणि' छबि धार ॥९॥

'यवन' राग 'हिन्दू' किये, रचि तिनहूं कौ ध्यान।
मरति गढ़ी निरूप की, सुद्ध किये मतिमान ॥१०॥

मुसलमात तौ का भये, पै सूफिन के भक्त।
तेई भगत कहावहीं, जे भगतनि अनुरक्त।।११।।

सूफिनि बाजे, ते मियाँ, नित अति सरल सुभाय।
रह्यौ गुनिन सिरमौर कौ, चिस्ती सों सदभाय।।१२।।

अन्त समय हू तिनि सुनी, तानसेन की तान।
जहाँगीर बरनी कथा, पढ़ि जानहिं मतिमान।।१३।।

अकबरनामौ जिनि पढ़्यौ, तिनि मन संसय नाहिं।
तानसेन यहि जग तज्यौ, नगर आगरौ माहिं।।१४।।

गावत गुनिजन अनुसरे, तानसेन-सब-संग।
कबहुँ मकबरनु महँ नहिन, अस बरात के ढंग।।१५।।

जिन्दा सूफी तौ सुनै, हालैं, सुनि संगीत।
मुए, न सँग बाजा बजै, तिनि के, सोचहु मीत।।१६।।

सूफिन-इतिहासनि भरे, सन्त गौस-अहवाल।
तहूँ न ढूँढेहु पाइयतु, तानसेन कौ हाल।।१७।।

वाजिदली दरबार कौ, लेखक करम इमाम।
सन्त गौस को मौजिज़ो, कहत न कहुं, किहि ठाम।।१८।।

कहूँ न किहि इतिहास महँ, सन्त गौस-सम्बन्ध।
तानसेन सो, किनि कह्यौ, कोरौ गप्प-प्रबन्ध।।१९।।

जद्यपि 'बड़े' भये सदा, यवन-हिन्दुअनि माहिं।
पै मुहमद 'अवतार' नहिं, राम 'पगम्बर' नाहिं।।२०।।

श्रद्धांजलि

-सुभाष

माखन-गोली जिनि गटकि, छिनु छिनु देह मुटानि।
वे गोली को स्वाद कहुँ, जानहिं पिंजरा-प्रानि ॥१॥

कहँ सुभास सौ सूरमा, कहँ जे माखन-सूर।
अजहुं तेज नहिं लखि परत, नयना द्वै, पै सूर ॥२॥

गये सूरमहिं, कछु अजहुं, बैर न हिय बिसराहिं।
चरचा चले, विवाद महं, झूंठनि साँचु हराहिं ॥३॥

गये सिंह, गजराज मृत, खावहिं गीदर दौरि।
कुटिल काल हरि सूरमहिं, कौन किये सिर मौरि ॥४॥

जौ लौं जग महं सूर-ससि, जौ लौं धरनि अकास।
तौ लौं पावन चरित नित, हिय हिय करत उजास ॥५॥

-आजाद

देस गुलाम रह्यौ सदा, सूर परम आजाद।
ससिसेखर सो नाम लहि, तजी न तिहिं मरजाद ॥१॥

गोलिनि तनु छलनी भयौ, छलनी कर्‌यौ सिकार।
लख्यौ न काहू सूरमा-, भौंहनि तनिक बिकार ॥२॥

जड़ सरीरहू जड़ किये, कायर, कूकुर, धन्न।
चुकतौ कियौ उरिन भयौ, भूजननी के अन्न ॥३॥

एक सूर की ओट बनि, बिरछ गयौ सुरलोक।
तीरथ बड़ो प्रयाग महँ, वहि थल नित अधमोक ॥४॥

निराला

जियत न पूछी बात जिनि, मुए करहिं जयकार।
सुखी निराला अमरपुर, तजि ऐसो संसार ॥१॥

समापन

सतत सरस दोहा-पुहुप, चुनि चुनि मन-फुलवारि।
तुमहिं समरपहुँ रसिकवर, सुरभउ भाय-बयारि।।१।।

कबहुँ, कहूँ, कोउ ऊपजै, सुरसति की अरदास।
ताहि नचावनि कामिनी, विरचि विरंचि हुलास।।२।।

इक दिन ऐसो अवसि, जग, नसिहैं यह उद्यान।
पै बानी-लतिका-कुसुम, बनि हैं रसिकन प्रान।।३।।

□□

स्फुट छंद

सवैया

जब तें घनस्याम गये तजि कै,
तब तें नहिं चैन रह्यौ ब्रज मैं।
कछु नाहिं परै लखि गोकुल मैं,
मन नाहिं लगै घर-कारज मैं॥
सब 'रङ्गअनङ्ग' उदास भये,
ब्रजनारि परैं जमुना रज मैं।
अजु धूरि भरी मुरली बिलखै,
धुन नाहिन बीन पखावज मैं॥

□□

सखि नैंनन रैन गई सिगरी,
अब भोर भये कछु आँख लगी।
दुउ भूलि गये रतियाँ कितनी,
बतियाँ करि हौं उन सङ्ग जगी॥
सुनु 'रङ्गअनङ्ग' प्रवीन महा,
छिन ही छिन बैनन सों उमँगी।
कछु जाय कह्यौ नहिं पीय भले,
कल-केलि-कलोलनि तीय ठगी॥

उन छन्द तज्यौ, अरु ताल तज्यौ,
पुनि राग तज्यौ, लय छोरि दई।
उन बोल तजे, पुनि भाव तज्यौ,
दिन रैन तऊ कछु गावतई॥
अजु 'रङ्गअनङ्ग' कहै जग सों,
किन बौरन की मति छीन लई?
अब गायक गान करैं कि वजैं,
सिर फोरत सारद, हाय दई!

□ □

कछु बोल कहैं, कछु राग कहैं,
कछु छन्द कहैं, कछु ताल कहैं।
कछु गीति कहैं, कछु रीति कहैं,
कछु काकु कहे बिन नाहिं रहैं॥
लय 'रङ्गअनङ्ग' कहैं, गतिहू,
कछु बोलि तरङ्गनि माहिं बहै।
जग जीतन कोउ चहै तु गहै,
रसरीत, जबै इनसों निबहै॥

बसि दूर सताबत हौ अति ही,
ब्रज की सुधि मोहन भूलि गये।
उरझे सुख भोगन माँहिं उतै,
हम जानत हैं कछु मीत नये॥
अति नाहिंन 'रङ्गअनङ्ग' करौ,
अब तौ जग के सिरमौर भये।
बस भौत भई बहुरौ हरिजू,
बिनु कारन दारुन दुक्ख दये॥

□ □

बतराबत हौ मनु नेह भरे,
इन बैनन जायँ न आजु ठगे।
इतराबत हौ करि नेह नयौ,
इत आबत हौ बनि एक सगे॥
तुम 'रङ्गअनङ्ग' भये भँवरा,
घर बाहर संतत प्रेम पगे।
जित बूँद मिलै रस की छिन हू,
उत लाल रहौ दिन रैन लगे॥

बिनु बात कलंक लगै ब्रज मैं,
नर-नारि हँसैं सखि कुंज गली।
जमुनातट कौन गयौ अजु तौ,
घर मैं उरझीं बृखभानुलली॥
संग 'रङ्गअनङ्ग' रही ललिता,
तहँ तें कुउ द्वै पग नाहिं चली।
नँदनन्दन ढीठ लबार महा,
कब कौन लई उनकी मुरली॥

□□

तुम तौ मग रोकत हौ ललना,
निज गैल तकौ, कछु काज करौ।
नहिं कञ्ज कली कुउ आज इतै,
नँदनन्दन अन्त कहूँ बिचरौ॥
नित 'रङ्गअनङ्ग' करौ मनकी,
कबहूँ जग तें कछु नाहिं डरौ।
बृखभानुलली घर रोकि लई,
अब चैन करौ जु गयौ झगरौ॥

जिन कौं मन लीन रहै हरि मैं,
उनकौं पुनि और कहा चहिये।
जिन पारस पाय अनन्द कियौ,
उन सों कछु और कहा कहिये॥
जहँ 'रङ्गअनङ्ग' पियूस भरौ,
सब छोरि उतै नितई रहिये।
सहिये नहिं औरन की छिनहू,
उत नेह-तरंगनि मैं बहिये॥

कुण्डलियाँ

दतिया-द्युति दमकत नई, पीताम्बा के तेज।
खिंचि खिंचि आवैं जन विविध, राखैं पुन्न सहेज।
राखैं पुन्न सहेज करैं जप बैठि निरन्तर।
कलि - मल - छालन होय नाम सों पावन अन्तर।
कह सुरगुरु कविराय मोर बदनन पै पतिया।
भुक्ति - मुक्ति जो चहै दौरि तू आ जा दतिया।।

दतिया तो महँ कौन गुन, जापै रीझे सिद्ध।
आजु पीठ राजत उतै कबहुं बसे जित गिद्ध।
कबहुँ रहे जित गिद्ध मसानी जित किलकारी
नाचो परम प्रसन्न डाकिनी दै दै तारी।
कह गुरुवर कविराय सिद्ध अलबेलौ धतिया
अनुपम तीरथ कियौ तपोबल आपुन दतिया।।

दतिया देखी सरसती थामे हाथ सितार।
घोंटा पै घोंटा धरे बैठी आसन मार।
बैठी आसन मार बिलायत खाँ की चेली।
ज्यों कुर्सी पर डटी विराजत अति अलबेली।
कह गुरुवर कविराय साज लाई कलकतिया।
धन्न सरसुती अजब रूप धरि आईं दतिया।।

दतिया के तस्कर भले, पैंट लेय भजि जायँ।
लाला बनि बनि जायँ ते, जे बनि साहब आयँ।
जे बनि साहब आयँ, रहैं घर-बाहर भइया।
कबौं न धारयौ यार, पैंट की जेब रुपैया।
कह सुरगुरु कविराय लग्यौ कुउ ऐसौ धतिया।
चोरी करि उपदेस देय कोऊ बसि दतिया।।

□

कवित्त

नीम सो न होउ कटु मधु सों मधुर नायँ,
सज्जननु सेइ नित चोरनु चपतिया।
गुनि-जन सनमानि, पण्डितनु बन्दि नित,
कवियनु पूजि आततायियनु लतिया।।
चलै चाल तोसों कोउ तौ निसङ्क होय प्रान,
कदम कदम तोड़ करि करि मतिया।
जो पै भुक्ति-मुक्ति चहै तौ तुरन्त काउ विध,
पीठ मैं पहुँचि जाव स्वामी जी की दतिया।।

लोक गीत सुधा

आज की दृष्टि से संगीत का एक उपयोग

□ बृहस्पति

आज आवश्यकता है ऐसे कवियों की, जो कल्पनाओं के झिलमिलाते हुए आकाश से उतर कर पृथ्वी के यथार्थ को देखें। वाणी का उपयोग लोक के लिए करें, जो सीधी भाषा समझता है। उस लोक से प्रेरणा लें, जो सीधा-सादा जीवन जीता है, जिसकी आवश्यकताएँ सीधी-सादी हैं और जिसकी बोल-चाल भी सीधी-सादी है।

भूखे लोग 'व्याकरण' से अपनी भूख नहीं बुझा सकते। प्यासों की प्यास 'शृंगाररस' से नहीं बुझाई जा सकती। 'स्वाभावोक्ति' का आश्रय लेकर आज लोक के हृदय की बात 'लोककवि' को कहना है।

लोकगीतों के छन्द छोटे-छोटे होते हैं। उनकी भाषा में प्रवाह होता है, उनमें एक स्वाभाविक गति होती है, उनमें प्रयुक्त स्वर सीधे-सादे और गिने चुने होते हैं, बच्चे, बूढ़े, जवान, नर, नारी सुनते ही उनका अनुकरण करने लगते हैं, इनकी एक पंक्ति को सुनकर तत्काल ही हजारों लोग दुहरा सकते हैं।

गीत के चार तत्व स्वर, शब्द ताल और गति हैं। गति का आधार छन्द और ताल हैं। इनकी सरलता 'गीत' की सरलता है।

गाँवों में लोकगीत गाने वाली महिलाएँ तत्काल ही उस गीत को भी दुहराती जाती हैं, जो उन्हें याद नहीं होता। गीत के चरणों का छोटा और सरल होना इसका कारण है।

लोक-संगीत की इन विशेषताओं को देखते हुए प्रवाह युक्त 'गीत' लिखने वाले आज 'युग' की आवश्यकता हैं, इन्हें प्रचलित और सरलतम धुनों में बाँधने वाले संगीत-निर्देशक परमावश्यक हैं।

गीत के द्वारा 'अर्थ' की भी सिद्धि होती है। देश को आज जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह देश के लिए 'अर्थ' ही नहीं 'परमार्थ' है।

'दहेज लेना बुरी बात है' इस उपदेश मात्र से काम नहीं चलेगा। काव्य और संगीत के योग से इस बात को यों कहा जा सकता है—

"ब्याह मैं नाँय करौंगी, कुवाँरी भलइ मरौंगी"...

इस गीत की भाषा समस्त हिन्दी-क्षेत्रों के शिक्षित और अशिक्षित सरलता-पूर्वक समझ लेंगे।

कामचोरी, सूदखोरी, जमाखोरी, रिश्वत, इत्यादि बुराइयों की ओर लोक-गीतों द्वारा भली भाँति ध्यान दिलाया जा सकता है।

आर्थिक कार्यक्रम से सम्बद्ध प्रधान-मंत्री के बीस-सूत्रों के अनुसार जो जो कार्य जनता की भलाई के लिए किए जा रहे हैं। उनकी सूचना लोकगीतों के द्वारा जनता को मनोरंजन रूप में दी जा सकती है। आज के युग में लोक की दृष्टि से संगीत का उपयोग किया जाना परमावश्यक है।

ऐसे गीतों का संगीतमय रूप तत्काल इस ढँग से प्रस्तुत किया जाना है जिसका उपयोग फिल्म डिविजन, टेलीविजन, रेडियो इत्यादि माध्यमों से हो सके। ग्रामो-फोन-कम्पनियाँ इनके रेकार्ड तैयार कर सकती हैं। इन गीतों को स्कूलों का बच्चा-बच्चा गायेगा।

पुण्य

गामन कुँआ खुदाए पुन्न,
सदा खेत सिंचवाए पुन्न,
सिगरी उपज बढ़ाए पुन्न। हर गंगा।

खरौ माल तोलौ तौ पुन्न,
नित्त पोल खोलौ तौ पुन्न,
जो साँची बोलौ तौ पुन्न। हर गंगा।

नफाखोर पकराए पुन्न,
सस्ते दाम कराए पुन्न,
घूसखोर बँधवाए पुन्न। हर गंगा।

दीनन दुःख हरौ तौ पुन्न,
करजा माफ करौ तौ पुन्न,
तस्कर जो पकरौ तौ पुन्न। हर गंगा।

(इनकम) सिगरे टैक्स चुकाए पुन्न,
थोरौ नफा कमाए पुन्न,
खातौ एक रखाए पुन्न। हर गंगा।

करौ नाँय चलताऊ पुन्न,
भूमि दिए उपजाऊ पुन्न,
छोर किए कमाऊ पुन्न। हर गंगा।

अच्छे घर बनवाए पुन्न,
थोरौ लिए किराए पुन्न,
साधे काज पराए पुन्न। हर गंगा।

बेघर लोग बसाए पुन्न,
सबकौं काज दिलाए पुन्न,
परती भूमि उगाए पुन्न। हर गंगा।

करे मसक्कत पूरी पुन्न,
चोखी दिए मजूरी पुन्न,
मेटे मन की दूरी पुन्न। हर गंगा।

पोथी दान किए तै पुन्न,
विद्या दान किए तै पुन्न,
ऐसो गान किए तै पन्न। हर गंगा।

दुर्जन

मरियौ सो सन्तान जु कुल कौं दाग लगाव।
मरियौ ऐसो बाप, बुरी जो गैल दिखावै।

मरियो ऐसी माय, पूत दुलरावै पापी।
मरियौ ऐसी नार करै जो आपाधापी।
मरियौ ऐसौ गुरु नायं जो सांच सिखावै।

जो परौस के काम न आवै, मरै परौसी
मरै पंच जो जानि बूझि कै छोरै दोसी।
मरै बैद जो रोगी देखि देखि ललचावै।

अहलकार सो मरै, जु लेवै घूंसकरारी।
बनिया मरे, करैं जो नित्त मिलावट भारी॥
सो नेता मरि जाय, जु गामन फूट करावै।

सूदखोर मरि जायं पियें जो खून गाम कौ।
वे वकील मरि जायं खायं पैसा हराम कौ॥
मरि जावै झूठौ गवाह, अन्याय मचावै।

मरैं लालची, धरैं गुदामन माल छिपाई।
नफाखोर मरि जायं, बढ़ावैं नित महंगाई।
सो दलाल मरि जाय, मुफत को नफा कमावै।

सो मजूर मरि जाय, भार धरती को भारी।
खरी मजूरी पाय, करै जो पै मक्कारी।
भूमि चोर मरि जाय, जु पूरी नायं बतावै।

खाय देस कौ, गावै पै औरन की गीता।
पोल खुल गई बाकी, जग में भयौ फजीता।
घर फोरा मरियौ, विदेस को पैसा खावै।

छापा पड़ना

सुनिये साहू धनीराम जी, धरमदास की सीख।
सांची सांची कहि डारो ना तो मांगोगे भीख॥
समै तो बदल गयौ जी।

हेरा फेरी करि कै पैसा केतौ लयौ बनाय।
कैसैं राखौ कितै कितै अब तुरतै देव बताय॥
दरोगा मचल गयौ जी।

केतो सोना, केते हीरा, केते बने मकान।
इनकम-टैक्स बचायो कैसें, सब कछु करो बखान॥
पायं तो फिसल गयौ जी।

सूधे सूधे कहि डारौ, तुम केती कीनी लूट।
जो सांची कहि देव मिलैगी बाकौ पूरी छूट॥
खबर में निकल गयौ जी।

सुनी जाय अब छापा परिगै रोवै चुंगी चोर।
काम न आवै कोउ बैलिष्टर उगलैं लाख-करोर॥
हाय ! मन दहल गयौ जी।

ठण्डौ लोहा, पत्थर जैसो, टस सों मस नहिं होय।
दया मया लोहा के नाहीं, ये जानें सब कोय॥
सांच पै पिघल गयौ जी।

सीमा होय सहन को भैया, हद्द जुलम की होय।
बिल्ली कुत्ता पै दौरे जो मिलै न मारन कोय॥
गरीबां उबल गयों जी।

गरीबी

भूखे भजन न होय गुपाल।
ये लै कण्ठी, ये लै माल॥

जो पै नित्त सतावै भूख,
हाड चामऊ जावैं सूख,
ठाडे टक टक ताकें रूख,
पेट मचै भारी भूचाल॥ भूखे……

दूध न उतरै दुबरी माय,
सूझै नाहीं कोउ उपाय,
बाप मरन चाहै बिस खाय,
हाय गोद में चीखै लाल॥ भूखे……

भलौ बुरो समझैं सब आप,
भूख करावै सिगरौ पाप,
म्हौं पे कोउ लगी ना छाप,
रांड़ गरीबी करै बिहाल॥ भूखे……

अन्न बस्त चाहै सब कोय,
सीस छिपावन कों घर ओय,
खेलैं छोरा छोरी दोय,
नाचैं कूदें करै निहाल॥ भूखे……

जो पै भूमि आपुनी होय,
बीज, खाद अरु बैलऊ दोय,
करै सिचाई जोते बोय,
रहै नायं कोऊ कंगाल॥ भूखे……

उचित सूद पै मिले उधार,
कारीगर पावै औजार,
कोउ करै अपनौ व्यौपार,
सबै होयंगे मालामाल ॥ भूखे……

उचित मजूरी हंसे मजूर,
करै काज अपनी भरपूर,
पेट भरे सूब चिन्ता दूर,
घर आपुन तौ जग भूपाल ॥ भूखे……

पढ़ाई

हमारे सैयां आय बसे निज गाम।

हमरे बलमा पढ़े किसानी जानैं सबै उपाय।
खेत खेत में उपज बढ़ैगी, कंचन बरसै आय।
बढ़ैंगे नाहीं, फेर बजारन दाम। हमारे०

हैं इंजिनियर हमरे सैयां गामै देयं सुधार।
कागद पै बनाय दें नक्सा, जैसौ करें बिचार।
बनेंगे माई, सुघर हमारे धाम। हमारे०

हमरे सैयां भये डागदर, छुअत रोग उड़ि जाय।
बड़ौ हात में जस है माई, सबै कहि रये आय।
सुनौ जी, रोगी छिन में पाय अराम। हमारे०

हमरे सैयां पढ़े वकालत जानैं सब कानून।
सब कौं राय मिलैगी माई चूसेंगे ना खून।
किसी कौ नाहीं नोचेंगे बे चाम। हमारे०

हमरे सैयां बड़े गवैया गायं सुहाने गीत।
बातनई सांची कहि देवें, बनि जावै जग मीत।
सबै ई जानैं, तिनि कौ एतौ नाम। हमारे०

सिगरे सेवा करैं गाम की, गाम सरग है जायं।
छोरा छोरी बनैं आदमी, बिपदा सबै नसायं।
हमै तो माई, चइयै नायँ छदाम। हमारे०

जिनके बेटा समरथ है गै, तिनें कहा परवाय।
सास-ससुर हमरे सुख पावैं, राम भजैं मन लाय।
करोंगी माई, सेवा आठों जाम। हमारे०

छापा पड़ना

जान बची तौ लाखन पाये।
लौट कै बुद्धू घर कौं आये।

दाबि दाबि कै धरैं रुपैया। डूब गई गहरे में नैया।
डकरावैं चोरन की मैया। कछू न होवैं रोये गाये। जान बची०

पकरि गये अब दोऊ खाता। आज बनै ना बिगरी बाता।
मनौं मरेऊ पै द्वै लाता। नौकर सिगरे भेद बताये। जान बची०

कहा लखौ बटुआ कें हीरा। मनौं ऊँट के म्हौं में जीरा।
थर थर काँपै अबौ सरीरा। गहना जेवर कहूँ छिपाये। जान बची०

खुलि गई आज छिपी अलमारी। निकसी उतै सम्पदा भारी।
मनौ हिये पै चलि गइ आरी। हाय ! विपत के बदरा छाये। जान बची०

छापा परिगौ, भयौ फजीता। धरी रह गई सिगरी गीता।
पीरे परिगे, मनौं पपीता। अपनेऊ ह्वै गये पराये। जान बची०

लछमी माता सबकी मैया। बन्द करी तहखानन, भैया।
ऐसे पातक ! कौन बचैया ? पाप कियेऊ ना सरमाये। जान बची०

अबऊ जो रस्ता पैं आवैं। ठीक चलैं औ नाम कमावैं।
तौ हमऊ इनकौ जस गावैं। मानौ हमरेई माँ जाये। जान बची०

मातृभाषा प्रेम

जाके पैर न भई बिवाई।
सो का जाने पीर पराई॥

जोतौ आय संग में खेत। बुद्धि तबै पावैगी चेत।
पुनि दीखेंगे सिगरे प्रेत। जिन जिन हम पै बिपदा ढाई॥ जाके पैर…

गामन में जिन रखौ न पायँ, वे हमरे दुख जानै नायँ।
बँगलन में बैठे बतियाँय, अंगरेजी जिनके मन भाई॥ जाके पैर…

हमरी बोली में उपदेस, करौ तु समझै सिगरौ देस।
जा में नायँ झूठ को लेस, सुनि पावैंगे लोग-लुगाई॥ जाके पैर…

इंगलिस में सिगरे कानून। हम तो बेचैं मिर्चा नून।
ठाड़े लखैं न्याव को खून, चलै न हमरी रोई गाई॥ जाके पैर…

लूटें गामन चतुर वकील, तैसे देखैं, जैसे चील।
सिगरौ माँस तुरत लैं छील, झगरनु में इनकी बनि आई॥ जाके पैर…

गिट्ट पिट्ट कछु करें अजीव, खोदें नित्त साँच की नीव।
इनकौ भोजन, गाम गरीब, परबत करैं, होय जो राई॥ जाके पैर…

नेता आवैं, जबै चुनाव, मानो पार करेंगे नाव।
मीठे बोलैं, मधुर सुभाव, बरसनु सूरत ना दिखराई॥ जाके पैर…

धांधली

नायँ चलैगी आज धाँधली नाय चलैगी ।।

जो अपनौ सो जी सबकौ जानौ तो मोय बताव,
धूप छाँव हम सहैं और तुम महलन मौज उड़ाव,
सम्पदा नाय फलैगी, आज धाँधली नायँ चलैगी ।। नायँ चलैगी···

हमऊ चाहैं इक छोटो सो हमरौऊ घर होय,
छोरा-छोरी-बैयरबानो सुख पावैं सब कोय,
जि होनी नायँ टलैगी, आज धाँधली नायँ चलैगी ।। नायँ चलैगी···

चोर बजारी, कर की चोरी करैं महल बनवायँ,
एक, दोय, दस खाली राखै, बेघर धक्का खायँ,
हाथ सों भूमि टलैगी, आज धाँधली नायँ चलैगी ।। नायँ चलैगी···

सरकारी कर्जा लै घर बनवायँ कियायौ खायँ,
आप रहैं सरकारी घर में, ये बाबू कहलायँ,
चातुरी तुरत गलैगी, आज धाँधली नाय चलैगी ।। नाय चलैगी···

परजा अपनी देस आपुनौ, अरु अपनी सरकार,
धोय धाय के पाप पुराने, सुखी करिय संसार,
तो करनी नायँ खलैगी, आज धाँधली नाय चलैगी ।। नाय चलैगी···

काला धन्धा

छोरि देव धन्धा कारौ।
करि डारौ मुख उजियारौ॥

चोर बजारी बाप करै, तौ बेटा डाकू होय।
बहुएँ नाम करैं घर-बाहर, हम ना सुख सों सोय।
फीकौ संसारौ॥ छोरि०

बेटी रीस करै भावज की, रहै न कुल मरजाद।
क्वारी-ब्याही एक भई जब, सबै बनी उस्ताद।
मेरौ मन हारौ॥ छोरि०

इक छोरा तौ गटकै बोतल, दूजौ जूआचोर।
तीजौ राँड़न पीछें भटकै, चौथौऊ कुलबोर।
तोरे सौ तारौ॥ छोरि०

अन्न देवताऊ कौ अब तौ नायँ कोउ सम्मान।
कन भर खावैं मन भर फेंकैं, घर औ नरक समान।
मेरौ दुख टारौ॥ छोरि०

करै मुनीम हकूमत हम पै, आँखें तुम्हें दिखाय।
घर कौ भेदी नैंक डरै ना, हमें देखि मुसकाय।
सो पैसा वारौ॥ छोरि०

दिल के दौरा तुम्हें सतावैं, नाँय द्वै दिना चैन।
नौकर नित्त बजावैं बंसी, हम जागें दिन रैन।
बिस्तर अंगारौ॥ छोरि०

दुनिया थू थू करै चोर की घरनी हम कहलायँ।
तीखे बोल सहैं औ रोवैं, जा मैं मंगल नायँ।
संकट जे भारौ ।। छोरि०

कहा करौगे पैसा एतौ, मोकौं नेंकु बताव।
नित्त दवाई चाटौ, हलुवा-पूरी कबौं न खाव।
दीदा क्यों फारौ ।। छोरि०

नायँ पाप की फरै कमाई, नायँ टिकै घर मायँ।
जैसे आवै, तैसैं जावै, विपदा सिगरी आयँ।
वाकौ म्हौं बारौ ।। छोरि०

आदर्श खेती

कुआँ खुदाये पुन्न बड़ोई कुआँ खुदाये।

धरती में ई नीर, दूर ना, खोदि निकारौ।
अपनी करौ सहाय आपई, कहा बिचारौ।
रहँट लगाये पुन्न बड़ोई रहँट लगाये ॥

बड़े कुआँ पै रहँट लगै नित होय सिंचाई।
खेत रहेंगे हरे भरे, सींचौ सब भाई।
बैल दिवाये पुन्न बड़ौ ई बैल दिवाये ॥

लगैं कुआँ पै बैल सबन के बारी बारी।
सब कौ कारज सधै नायँ काऊ की ख्वारी।
उपज बढ़ाये पुन्न बड़ौ ई उपज बढ़ाये ॥

खेती पकै तु काटै सिगरौ गाम नेम तैं।
एक दूसरे की सहाय सब करैं प्रेम तैं।
हाथ बटाये पुन्न बड़ो ई हाथ बटाये ॥

चूहा खायँ कुठारन मायँ, कछू घुनि जाई।
बेंचि भाव पै अन्न सबनु की करौ सहाई।
पेट भराये पुन्न सबन कौ पेट भराये ॥

खाली रखै न भूमि आपुनी जोतै बोवै।
सस्तौ जो पै अन्न, सब कछु सस्तौ होवै।
भाव गिराये पुन्न बड़ोई भाव गिराये ॥

अपनौ सो जिय जानि सबन कौ कारज कीजै।
बाँटि लीजिये दुक्ख जगत कौ, औ सुख दीजै।
चैन कराये पुन्न, सबन कौ चैन कराये ॥

सुधार

जो अन्त भलौ तौ सबै भलौ।
सैयाँ अब सूधी गैल चलौ।।जो०

दहलै दिन रैन तुम्हारौ मन। सब सूखि गई काया कंचन।
ना भूख लगै, देखौ दरपन। सोचौ तुम नहले पै दहलौ।। जो०

इक झूट बुलावै लाख झूट। औ घूँसखोर ऊ लेयँ लूट।
इक दिन तौ आवैं भाग फूट। तुम क्यों छाती पै मूँग दलौ।। जो०

का धरौ नींद की गोली मैं। साँचौ सुख साँची बोली मैं।
ना मैं कछु कहौ ठिठोली मैं। साबुन तौ म्हौं पै नैक मलौ।। जो०

घर की चाकी घर कौइ चून। घर की रोटी दुय डरी नून।
खावैं निचिन्त है दोय जून। एतौ होवै तौ दुक्ख टलौ।। जो०

पापी जो पै तजि देय पाप। तौ वाकौ मारग खुलै आप।
जेई मंतर औ जेइ जाप। जाई तें फूलौ और फलौ।। जो०

कारौ घन कारौ चित्त करै। कारौ मुख कारिख नायँ टरै।
जो गिरि कै ऊ छिन मैं संभरै। तौ दूर होय सिगरौ घपलौ।। जो०

ब्योरौ दे कै कारे घन कौ। मल दूर करौ जी तन-मन कौ।
मारग साँचौ हरि दरसन कौ। दुनिया कौं कबऊ नायँ छलौ।। जो०

सहकारी दूकान

ओछी पूंजी खसमैं खाय, मिलि जुलि कीजै एक उपाय।

खोलैं सहकारी दूकान, सब कौ साझौ रहै समान।
बाँटें सहज नफ़ा-नुकसान, गाम गाम जा मैं सुख पाय ।। ओछी पूंजी०

हम तौ ना जानैं कानून, छोटी सी राखैं परचून।
बेचैं हरदी, मिर्चा, नून, कौन वकीलन पै रिरियाय ।। ओछी पूंजी०

जाकी तौ चिन्ता बेकार, चेति गई अपनी सरकार।
सबै सलाह मिलैगो यार, सिगरी बिपता गई नसाय ।। ओछी पूंजी०

जो पै सभी पंच मिलि जायँ, तौऊ एती पूंजी नायँ।
जो दूकान बड़ी खुलवायँ, रोकड़ देगो कौन गिनाय ।। ओछी पूंजी०

'लौन' मिलैगो संसय नायँ, बैंक आ गये गामन माँय।
'लिखा-पढ़ी' जो करिकै जायँ, छिन मैं काज सबै बनि जाय ।।ओछी०

कितै मिलै, जो बेचैं माल, पालै कौन एक जंजाल।
तू तौ नित्त बजावै गाल, ठाढौ बातें रह्यौ बनाय ।। ओछी पूंजी०

सहकारी दूकान चलायँ, बीसन ऐसे सहरन मायँ।
वे पावैं तौ हमऊ पायँ, जान लेव तुम सहज सुभाय ।। ओछी पूंजी०

तू गै पूरौ भयौ वकील, दयौ आज मेरौ म्हौं कील।
तुरत करौ, ना चइये ढील, अपनो कीजै आप सहाय ।। ओछी पूंजी०

बेईमानी

चोर चोर मौसेरे भैया।
इनको तो भगवान रुपैया।।

चोरन तें चोरी करवायँ, साहन उतै जगावन जायँ।
देखैं मजा और मुसकायँ, मोटे ह्वे रे घूँस खवैया।। चोर चोर…

भुस मैं देवैं आग लगाय, ठाड़े दूर रहे मुसकाय।
कहैं, बुझावन कोऊ आय, ऐसे हैं जे कुमर कन्हैया।। चोर चोर…

जीवै कोय, मरै बरु कोय, इनहिं पियारे पैसा दोय।
चहैं नित्त कछु घपलौ होय, मरै नाँय तो इनकी मैया।। चोर चोर…

चुँगी चोरन के रखवार, तस्करऊ के गहरे यार।
बनैं साँच के पहरेदार, यहै डुबावै हमरी नैया।। चोर चोर…

हिरदै नाहिं साँच को लेस, वैसैं बड़ौ सुहानौ बेस।
आगे पीछे रहें हमेस, दरबारन के सीस नवैया।। चोर चोर…

जालिमसिंह के चार सपूत, चारों के चारों जमदूत।
इनिकौं लगौ बिदेसी भूत, ये बिदेस के नित्त जवैया।। चोर चोर…

बेइमान की कोउ न जात, अपनी नित्त लगावै घात।
कहै गरीबा साँची बात, सोई सबसों बड़ो गवैया।। चोर चोर…

भ्रष्टाचार

उन पूतन सों बाँझ भली।

माल छिपाय भरैं गोदाम, ऊँचे करैं बजारन दाम।
जिनके म्हौं को लगो हराम, जिनसों दुनिया जाय छली ।।उन पूतन सों०

हरदी में माटी मिलवायँ, मिर्चा में कछु और खवायँ।
गेहूँ में काँकर पिसवायँ, दुखिया रोवें गली-गली ।।उन पूतन सों०

एक दोय, दस बने मकान, चाकर देखि रए दूकान।
नायँ करैं कर को भुगतान, रहै धाँधली नित्त चली ।।उन पूतन सों०

झूठे कागद जौन करायँ, और अँगूठाऊ लगवायँ।
छिन में गाय-बैल बिकवायं, तिनसों मौतउ रहै टली ।।उन पूतन सों०

झपटि माँस पै जैसे चील, सिगरी खाल लेय छिन छील।
फीस वसूलें चतुर बकील, उनकी चँदिया अजब ढली ।।उन पूतन सों०

घूंस लेय जो मोटे होयँ, सुख सों पैर पसारे सोयँ।
जिनके चूसे निसदिन रोंय, उनहिं नौकरी खूब फली ।।उन पूतन सों०

नित्त मजूरन जे बहकायँ, हड़तालैंऊँ खूब करायँ।
कहाँ कहाँ ते रकमैं खायँ, उनके मन की खिली कली ।।उन पूतन सों०

कामना

लल्ला के ताऊ राम राम।
पाँती बाँचौ, मेरौ पनाम॥

जो अन्न, दूध, घी मिलै नित्त। पोथी मिलि जावैं, लगै चित्त।
तौ हमौ पढ़ावैं, अपुनि बित्त। हमरेऊ छोरा करैं नाम॥ लल्ला०

जे खेल कूद मैं जायँ जीत। मानैं ना काऊ की अनीत।
जानैं गामन की भली रीत। इनतें उजियारौ होय धाम॥ लल्ला०

लीडर, इंजिनियर, कलाकार। बैलिष्टर, अफसर, अहलकार।
जनरल, करनल इनमैं अपार। इनमैं ई सिगरौ सरंजाम॥ लल्ला०

गामन मैं जनमैं बड़े बीर। ऊँचौ चौड़ौ चकलौ सरीर।
डारैं भैंसा के सींग चीर। ना चइयै कोउ ताम झाम॥ लल्ला०

सूधौ सुभाय, नाहीं पखंड। भाँजैं मुगदर औ करैं डंड।
पहरन लगायँ बैठक अखंड। दुसमन कौ तौ कामै तमाम॥ लल्ला०

जानैं कुस्ती के सबै दावँ। बैरिन कौ पूछैं तुरत नावँ।
आकास दिखावैं तेइ ठावँ। लाखन ठोकैं इनिकौं सलाम॥ लल्ला०

जे लरैं कालऊ सों निसंक। ना सहैं काउ की भौंह बंक।
जे हनूमान ज्यों चढ़ैं लङ्क। इनके मन भय कौ कौन काम॥ लल्ला०

नेता

तरौ हमारौ बंस, भयौ लल्ला औतारी।
दुनिया करै सलाम, है गयौ नेता भारी॥

पढ़ौ लिखौ कछु नाँय, सरसुती कंठ बिराजै।
काम काज ना कछु, लच्छमी तौऊ राजै।
मन्तर साधौ कौन करी है कासों यारी॥तरौ०॥

मुसुकावै दिन रैन, कबौं ना कोपै भैया।
कोऊ गारी देय, तऊ सो लेय बलैया।
ऐसो भलौ सुभाय, करैं अचरज नर नारी॥तरौ०॥

दोउ छिन लेय न चैन, कबौं ना दिन में सोवै।
कबौं न रीती पेट, कबौं न पइसा खोवै।
लगौ रहै दिन रैन, बड़ौ ही पर उपकारी॥तरौ०॥

ताकी कोठी सरग लोक है, पूरी भैया।
नित्त अपछरा जुरैं, बहै दिन रैन रुपैया।
इच्छा पूरन होय सबन की बारी बारी॥तरौ०॥

बनिया चोर लबार, सबै बापै चलि आवैं।
बाको देई असीस, आपनो काम बनावैं।
बिपता सबकी हरै, मनो दूजो गिरधारी॥तरौ०॥

काऊ कौ परमिट दिलवावै, जतन कराई।
टेलीफून दुकान जहर हू सकै दिलाई।
बाकी ऐसी बात, सकै ना कोऊ टारी।।तरौ०।।

टेलीबिजन घड़ी ट्राँजिस्टर कार दिलावै।
खरौ बिदेसी माल पलक झपके भिलि जावै।
बड़ी बड़ी मूछन वारे ऊ आज्ञाकारी।।तरौ०।।

भए महीना दोय कि लल्ला कौ मोंह् उतरो।
सन्न है गयौ मनो कोय माटी कौ पुतरो।
कछू भई ना नजर करोरन बार उतारी।।तरौ०।।

भए आठ दिन लल्ला मेरो घर ना आयौ।
सौतें फुसफुस करैं कि सो तौ जेल पठायौ।
सुनी जाय थाना में सिगरी बात उचारी।।तरौ०।।

चन्दा

इक चन्दा आकास बिराजै, दूजो थैली माँय,
तीजौ चन्दा सुन्दर गोरी, हम तौ चन्दा खाँय,
घूमैं सुच्छन्दा।। चन्दा दै भई दै चन्दा

कोऊ दूज कौ चन्दा देखैं, और चढ़ावैं नीर,
कोउ पूनम कौ चन्दा पूजै, हम चन्दा के पीर,
खाँय कलाकन्दा।। चन्दा दै भई दै चन्दा

चन्दा हमरौ माँय-बाप, चन्दा हमरी सन्तान,
चन्दा हमरौ कुटुम-कबीला, चन्दा ही भगवान,
हम बाके बन्दा।। चन्दा दै भई दै चन्दा

हम परजाती चिन्ता में डूबे छिन छिन मुटियाँय,
हमरी बातन में निरधन औ धनी सभी फँसि जाँय,
डारें सो फन्दा।। चन्दा दै भई दै चन्दा

दौरि भाजि कै हम चोरन की करें सदैव सहाय,
जाकौं त्यागै राम गरे सों हमरे सो लगि जाय,
नाँय दबौं मन्दा।। चन्दा दै भई दै चन्दा

चोर बजारी करिकै जो फँसि जाय, बहावै नीर,
छील छाल चिकनावैं वाकौ सूधो करैं सरीर,
दै के द्वै रन्दा ।। चन्दा दै भई दै चन्दा

हमरे होय न खेती भैया, नाँय कोऊ दूकान,
करी नौकरी सात जनम ना, तऊ खाँय पकवान,
अपनौ जे धन्धा ।। चन्दा दै भई दै चन्दा

क्यों तू ब्यौरी माँगै भैया, संग न हम लै जाँय,
कौरी कौरी छोरि जाँयगे, लीजो तुरत गिनाय,
खोदे क्यों गन्दा ।। चन्दा दै भई दै चन्दा

दहेज

ब्याह मैं नायँ करौंगी, कुँवारी भलइ मरौंगी।।

जो दहेज माँगैं तौं बाकी मौंह देखोंगी नायँ।
जो पे करजा लै कै पप्पा मोकों ब्याहन जायँ।
तौ घर सों नायँ टरौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।

जो तू चाहै कोऊ जमाई पैसा वारो होय।
हेरा फेरी करै और कंगन गढ़वावै मोय।
तो ऐसौ नायँ करौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।

जो तू सूदखोर ढूँढ़ै तौ सुन लै कान लगाय।
खून चूसबे बारे नित्त बठोरैं सबकी हाय।
उतै दिन रैन डरौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।

सिगरे बेईमान निपूते करैं झूठ कौं साँच।
सबरन कौ मौंह फोंक देहु लै कै थोरी सी आँच।
सबन कौं दुःख हरौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।

भाँवर सों उठ जाउँ, करै जो तू बरजोरी कोय।
सिगरे जग में होय फजीता, कोऊ न ब्याहै मोय।
उतै ऐसी झगरौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।

भारी कहा पेट की छोरी, जो तू हाँकै मोय।
राँड़ समझ कै मोय राख लै, और न अपनौ कोय।
नित्त ही पाँय परौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।

हाथ पैर भगवान दए, तो चिन्ता कोऊ नाँय।
करौं मजूरी, सबै भार में छोरा वारे जाँय।
काउ सों नायँ डरौंगी। ब्याह मैं नायँ करौंगी।।
कुँआरी भलइ मरौंगी, ब्याह में नायँ करौंगी।।

लोभ

सुनौ रे भैया लोभ नरक कौ मूल।

लोभी बनिया दाम बढ़ावै, और छिपावै माल।
दुनिया भूखी मरै, सेठ जी दिन दिन मालामाल।
न माने मोरी समझें बात फिजूल।। सुनो रे०

असली माल मिले ना कोऊ, नकली दुनिया खाय।
काँकर माटी और न जाने कहा पेट में जायँ।
उठै रे भैया नित्त पेट में सूल।। सुनो रे०

ऐसी दवा बनावें नकली दुनिया चक्कर खाय।
अस्पताल पहुँचेई रोगी, सूई लगत भर जाय।
कसाई ऐसे धरम ऊ जावें भूल।। सुनो रे०

पाप लगै इनको मोंह देखे, ऐसे मानैं नायँ।
सूधे होयँ पुलिस के आगे, बिन मारे चिल्लायँ।
बचौ रे भैया, इनकी हट गई चूल।। सुनो रे०

परिवार-नियोजन

कहि गए बाबा तुलसीदास, करै गरीबी सत्यानास।

जो पै होय अधिक सन्तान, निर्धन पावै दुःख महान।
रोटी कपड़ा नायँ मकान, चरै कहा जंगल में घास ।। कहि गए०

जल संकोच विकल भई मीन, बिबिध कुटुंबी जौं धन हीन।
चित्त मलीन सरीर औ छीन, कबौं सुक्ख ना फटकै पास ।। कहि गए०

कछु आँगन में भूखे रोयँ, कोऊ आँचर नित्त भिजोयँ।
दुर्बल घरनी पेटे धोय, पुनि उबकाई रहै उदास ।। कहि गए०

कैसे एते सकै समेट, कौन सकै दुःख बाकौ मेट।
करैं कहा पति खाली पेट, दीखै नाहिं कोउ उजास ।। कहि गए०

बिना रोय सोवैं ना रैंन, ठोकैं करम न पावैं चैंन।
बोलैं सदा बिस बुझे बैंन, झींकत रहै बार औ बाँस ।। कहि गए०

टाल सकै ना जो पै पाप, तौ क्यों सीस बढ़ावै पाप।
भोगे दुःख देय सन्ताप, बासों कहा चैन की आस ।। कहि गए०

जो पैं संजम नाहीं होय, अस्पताल तौ नियरे कोय।
कहौ डाकदर से दुख रोय, ऐसे ताकौ कहा अकास ।। कहि गए०